इति देव्या समापृष्टो भगवानिन्दुभूषणः।
सम्प्रशस्य महेशानीं वक्तुं समुपचक्रमे॥ ३०

देवीके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर भगवान् चन्द्रभूषण [उन] महेश्वरीकी प्रशंसा करके कहने लगे— ॥ ३० ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां देवीदेवसंवादे देवीकृतप्रश्नवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें देवीदेवसंवादमें देवीकृत प्रश्नवर्णन नामक दूसरा अध्याय पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अथ तृतीयोऽध्यायः

प्रणवमीमांसा तथा संन्यासविधिवर्णन

ईश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
तस्य श्रवणमात्रेण जीवः साक्षाच्छिवो भवेत्॥ १

ईश्वर बोले—हे देवि! आप मुझसे जो पूछ रही हैं, उसे मैं आपसे कह रहा हूँ, सुनिये; उसके सुननेमात्रसे जीव साक्षात् शिव हो जाता है ॥ १ ॥

प्रणवार्थपरिज्ञानमेव ज्ञानं मदात्मकम्।
बीजं तत्सर्वविद्यानां मन्त्रं प्रणवनामकम्॥ २

प्रणवके अर्थको जान लेना ही मेरा ज्ञान है, प्रणव नामक वह मन्त्र सभी विद्याओंका बीज है ॥ २ ॥

अतिसूक्ष्मं महार्थं च ज्ञेयं तद्वटबीजवत्।
वेदादि वेदसारं च मद्रूपं च विशेषतः॥ ३

देवो गुणत्रयातीतः सर्वज्ञः सर्वकृत्प्रभुः।
ओमित्येकाक्षरे मंत्रे स्थितोऽहं सर्वगः शिवः॥ ४

उसे वटबीजके समान अति सूक्ष्म तथा [विशाल] वटवृक्षके समान महान् अर्थवाला जानना चाहिये, यह वेदका आदि, वेदका सार और विशेषरूपसे मेरा स्वरूप है। तीनों गुणोंसे परे, सर्वज्ञ, सर्वकृत्, देवस्वरूप, सर्वसमर्थ तथा सर्वत्र व्याप्त मैं शिव इस ओम् नामक एकाक्षर मन्त्रमें निवास करता हूँ ॥ ३-४ ॥

यदस्ति वस्तु तत्सर्वं गुणप्राधान्ययोगतः।
समस्तं व्यस्तमपि च प्रणवार्थं प्रचक्षते॥ ५

सर्वार्थसाधकं तस्मादेकं ब्रह्मैतदक्षरम्।
तेनोमिति जगत्कृत्स्नं कुरुते प्रथमं शिवः॥ ६

[इस जगत्‌में] जो भी वस्तु है, वह सब गुणोंकी प्रधानतासे और समष्टि या व्यष्टिरूपसे प्रणवार्थ ही है। इसीलिये एकाक्षर ब्रह्मस्वरूप यह प्रणव सभी अर्थोंका साधक है। शिवजी इसी प्रणवसे सबसे पहले समस्त संसारका निर्माण करते हैं ॥ ५-६ ॥

शिवो वा प्रणवो ह्येष प्रणवो वा शिवः स्मृतः।
वाच्यवाचकयोर्भेदो नात्यन्तं विद्यते यतः॥ ७

तस्मादेकाक्षरं देवं मां च ब्रह्मर्षयो विदुः।
वाच्यवाचकयोरैक्यं मन्यमाना विपश्चितः॥ ८

शिवको ही प्रणवस्वरूप तथा प्रणवको ही शिवस्वरूप कहा गया है; क्योंकि वाच्य-वाचकमें कुछ भी भेद नहीं होता है। इसीलिये वाच्य तथा वाचकमें एकता मानते हुए ब्रह्मर्षिगण मुझ शिवको एकाक्षर कहते हैं ॥ ७-८ ॥

अतस्तदेव जानीयात्प्रणवं सर्वकारणम्।
निर्विकारी मुमुक्षुर्मां निर्गुणं परमेश्वरम्॥ ९

अतः विकाररहित तथा मोक्षकी इच्छावालेको चाहिये कि उस प्रणवको ही मुझ सर्वकारण, निर्गुण परमेश्वरके रूपमें समझे ॥ ९ ॥

एनमेव हि देवेशि सर्वमन्त्रशिरोमणिम्।
काश्यामहं प्रदास्यामि जीवानां मुक्तिहेतवे॥ १०

हे देवेशि! मैं काशीमें जीवोंकी मुक्तिके लिये सभी मन्त्रोंमें श्रेष्ठ इसी प्रणवका उपदेश करता हूँ ॥ १० ॥

तत्रादौ सम्प्रवक्ष्यामि प्रणवोद्धारमम्बिके।
यस्य विज्ञानमात्रेण सिद्धिश्च परमा भवेत्॥ ११

हे अम्बिके! अब मैं सर्वप्रथम प्रणवोद्धारका वर्णन करूँगा, जिसका ज्ञान हो जानेसे परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है॥ ११॥

निवृत्तिमुद्धरेत्पूर्वमिन्धनं च ततः परम्।
कालं समुद्धरेत्पश्चाद्दंडमीश्वरमेव च॥ १२

वर्णपञ्चकरूपोऽयमेवं प्रणव उद्धृतः।
त्रिमात्रबिन्दुनादात्मा मुक्तिदो जपतां सदा॥ १३

सर्वप्रथम निवृत्तिकलारूप अकारका उद्धार करे, तत्पश्चात् इन्धनकलारूप उकारका, कालकलारूप मकारका, दण्डकलारूप बिन्दुका तथा ईश्वरकलारूप नादका उद्धार करे। इस प्रकार तीन मात्रा, बिन्दु तथा नादस्वरूप पंचवर्णरूप यह प्रणव उद्धृत किये जानेपर जप करनेवालोंको सदा मुक्ति प्रदान करता है॥ १२-१३॥

ब्रह्मादिस्थावरान्तानां सर्वेषां प्राणिनां खलु।
प्राणः प्रणव एवायं तस्मात्प्रणव ईरितः॥ १४

आद्यं वर्णमकारं च उकारमुत्तरे ततः।
मकारं मध्यतश्चैव नादान्तं तस्य चोमिति॥ १५

यह प्रणव ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंका प्राण ही है, अतः इसे प्रणव कहा गया है। इस प्रणवका आदि अक्षर अकार है, उसके बाद उकार, मध्यमें मकार और अन्तमें नाद है, इनके संयोगसे 'ओम्' बनता है॥ १४-१५॥

जलवद्वर्णमाद्यं तु दक्षिणे चोत्तरे तथा।
मध्ये मकारं शुचिवदोंकारे मुनिसत्तम॥ १६

हे मुनिसत्तम! आदि वर्ण अकार, जो कि उकारके दक्षिणमें है तथा अकारके उत्तरमें स्थित उकार—ये दोनों जलवत् शुभ्र आभावाले हैं तथा ओंकारके मध्यमें स्थित मकार अग्निकी भाँति तेजोमय है॥ १६॥

अकारश्चाप्युकारोऽयं मकारश्च त्रयं क्रमात्।
तिस्रो मात्राः समाख्याता अर्धमात्रा ततः परम्॥ १७

अर्धमात्रा महेशानि बिन्दुनादस्वरूपिणी।
वर्णनीया न वै चाद्धा ज्ञेया ज्ञानिभिरेव सा॥ १८

अकार, उकार एवं मकार—ये क्रमसे तीन मात्राएँ कही गयी हैं, उसके बाद अर्धमात्रा है। हे महेशानि! यह अर्धमात्रा ही नाद-बिन्दुस्वरूपवाली है, जिसका निश्चय ही वर्णन नहीं किया जा सकता, उसे तो ज्ञानीलोग ही जान सकते हैं॥ १७-१८॥

ईशानः सर्वविद्यानामित्याद्याः श्रुतयः प्रिये।
मत्त एव भवन्तीति वेदाः सत्यं वदन्ति हि॥ १९

तस्माद् वेदादिरेवाहं प्रणवो मम वाचकः।
वाचकत्वान्ममैषोऽपि वेदादिरिति कथ्यते॥ २०

'ईशानः सर्वविद्यानाम्' इत्यादि श्रुतियाँ मुझसे ही प्रकट हुई हैं—ऐसा वेदोंने सत्य कहा है। इसलिये वेदका आदि मैं ही हूँ और प्रणव मेरा वाचक है। मेरा वाचक होनेके कारण यह प्रणव वेदोंका आदि भी कहा जाता है॥ १९-२०॥

अकारस्तु महद् बीजं रजः स्रष्टा चतुर्मुखः।
उकारः प्रकृतिर्योनिः सत्त्वं पालयिता हरिः॥ २१

मकारः पुरुषो बीजी तमः संहारको हरः।
बिन्दुर्महेश्वरो देवस्तिरोभाव उदाहृतः॥ २२

नादः सदाशिवः प्रोक्तः सर्वानुग्रहकारकः।
नादमूर्द्धनि संचिन्त्यः परात्परतरः शिवः॥ २३

अकार इसका महान् बीज है, जो रजोगुणयुक्त सृष्टिकर्ता ब्रह्मास्वरूप है। उकार उसकी योनिरूपा प्रकृति है, जो सत्त्वगुणयुक्त पालनकर्ता हरिका स्वरूप है। मकार बीजयुक्त पुरुष है, जो तमोगुणसे युक्त संहारकर्ता सदाशिवका स्वरूप है। बिन्दु साक्षात् प्रभु महेश्वर हैं, उन्हींसे जगत्का तिरोभाव कहा गया है। नादको सदाशिव कहा गया है, जो सबपर अनुग्रह करनेवाले हैं, नादरूप मूर्धामें परात्परतर शिवका ध्यान करना चाहिये॥ २१—२३॥

स सर्वज्ञः सर्वकर्त्ता सर्वेशो निर्मलोऽव्ययः।
अनिर्देश्यः परब्रह्म साक्षात्सदसतः परः॥ २४

वे सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वेश, निर्मल, अविनाशी, अनिर्देश्य तथा सत्-असत्से परे साक्षात् परब्रह्म हैं॥ २४॥

अकारादिषु वर्णेषु व्यापकं चोत्तरोत्तरम्।
व्याप्यं त्वधस्तनं वर्णमेवं सर्वत्र भावयेत्॥ २५

[प्रणवके घटक] वे अकारादि वर्ण क्रमशः उत्तरोत्तर व्यापक हैं और वे ही पूर्व-पूर्व वर्ण व्याप्य हैं, इस प्रकारकी भावना सर्वत्र करनी चाहिये॥ २५॥

सद्यादीशानपर्यन्तान्यकारादिषु पञ्चसु।
स्थितानि पञ्च ब्रह्माणि तानि मन्मूर्त्तयः क्रमात्॥ २६

अकारादि पाँचों वर्णोंमें क्रमशः सद्योजातसे ईशान-पर्यन्त पाँच ब्रह्म स्थित हैं, वे मेरी ही मूर्तियाँ हैं॥ २६॥

अष्टौ कलाः समाख्याता अकारे सद्यजाः शिवे।
उकारे वामरूपिण्यस्त्रयोदश समीरिताः॥ २७
अष्टावघोररूपिण्यो मकारे संस्थिताः कलाः।
बिन्दौ चतस्रः संभूताः कलाः पुरुषगोचराः॥ २८
नादे पञ्च समाख्याताः कला ईशानसंभवाः।
षड्विधैक्यानुसंधानात्प्रपञ्चात्मकतोच्यते ॥ २९
मन्त्रो यन्त्रं देवता च प्रपञ्चो गुरुरेव च।
शिष्यश्च षट्पदार्थानामेषामर्थं शृणु प्रिये॥ ३०

हे शिवे! अकारमें सद्योजातसे उत्पन्न आठ कलाएँ कही गयी हैं। उकारमें वामदेवरूपिणी तेरह कलाएँ कही गयी हैं। मकारमें अघोररूपिणी आठ कलाएँ स्थित हैं। बिन्दुमें पुरुषरूपिणी चार कलाएँ स्थित हैं। नादमें ईशानसे प्रादुर्भूत पाँच कलाएँ कही गयी हैं। छः पदार्थोंकी एकताके अनुसन्धानसे [प्रणवकी] प्रपंचात्मकता कही जाती है। मन्त्र, यन्त्र, देवता, प्रपंच, गुरु एवं शिष्य—ये ही छः पदार्थ हैं। हे प्रिये! इन छः पदार्थोंका अर्थ सुनो॥ २७—३०॥

पञ्चवर्णसमष्टिः स्यान्मन्त्रः पूर्वमुदाहृतः।
स एव यंत्रतां प्राप्तो वक्ष्ये तन्मण्डलक्रमम्॥ ३१

यन्त्रं तु देवतारूपं देवता विश्वरूपिणी।
विश्वरूपो गुरुः प्रोक्तः शिष्यो गुरुवपुः स्मृतः॥ ३२

प्रणवमन्त्र पाँच वर्णोंका समुदाय है, यह पहले ही कहा गया है, देवता ही यन्त्रभावको प्राप्त होता है, अब मैं उसके मण्डलक्रमको कहता हूँ। यन्त्र देवतास्वरूप है और देवता विश्वरूप है, गुरुको विश्वरूप कहा गया है और शिष्यको गुरुका शरीर कहा गया है॥ ३१-३२॥

ओमितीदं सर्वमिति सर्वं ब्रह्मेति च श्रुतेः।
वाच्यवाचकसम्बन्धोऽप्ययमेवार्थ ईरितः॥ ३३

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'—इस श्रुतिसे सारा प्रपंच ही ओंकारस्वरूप है, इसी वाच्य-वाचक सम्बन्धसे [प्रपंचकी वाचकता तथा ब्रह्मकी वाच्यतारूप] अर्थ भी कह दिया गया॥ ३३॥

आधारो मणिपूरश्च हृदयं तु ततः परम्।
विशुद्धिराज्ञा च ततः शक्तिः शान्तिरिति क्रमात्॥ ३४
स्थानान्येतानि देवेशि शान्त्यतीतं परात्परम्।
अधिकारी भवेद्यस्य वैराग्यं जायते दृढम्॥ ३५

हे देवेशि! मूलाधार, मणिपूर, हृदय, विशुद्धि, आज्ञा, शक्ति, शान्ति और परात्पर शान्त्यतीत—ये [आठ] स्थान हैं, जिसे दृढ़ वैराग्य होता है, वही इस प्रणवका अधिकारी है॥ ३४-३५॥

विषयः स्यामहं देवि जीवब्रह्मैक्यभावनात्।
सम्बन्धं शृणु देवेशि विषयः सम्यगीरितः॥ ३६

जीवात्मनो मया सार्धमैक्यस्य प्रणवस्य च।
वाच्यवाचकभावोऽत्र सम्बन्धः समुदीरितः॥ ३७

हे देवि! मैं ही जीव और ब्रह्मकी एकत्वभावनासे इस प्रणवका विषय हूँ। हे देवेशि! प्रणवका विषय [नामक अनुबन्ध] भलीभाँति कह दिया, अब सम्बन्धको सुनिये। जीवात्माका मुझ परमात्माके साथ ऐक्य इस प्रणवका विषय है और वाच्यवाचकभाव ही यहाँपर सम्बन्ध है॥ ३६-३७॥

व्रतादिनिरतः शान्तस्तपस्वी विजितेन्द्रियः।
शौचाचारसमायुक्तो भूदेवो वेदनिष्ठितः॥ ३८
विषयेषु विरक्तः सन्नैहिकामुष्मिकेषु च।
देवानां ब्राह्मणानां च सद्भक्तश्च शिवव्रती॥ ३९
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञं वेदान्तज्ञानपारगम्।
आचार्यमुपसङ्गम्य यतिं मतिमतां वरम्॥ ४०
दीर्घदण्डप्रणामाद्यैस्तोषयेद्यत्नतः सुधीः।
शान्त्यादिगुणसंयुक्तः शिष्यः सौशील्यवान् वरः॥ ४१

व्रत आदिमें निरत, शान्त, तपस्वी, जितेन्द्रिय, पवित्र आचरणसे युक्त, इस लोक तथा परलोकके विषयोंसे विरक्त, देवताओं तथा ब्राह्मणोंमें उत्तम भक्ति रखनेवाले, बुद्धिमान्, शिवव्रती, शान्ति आदि गुणोंसे युक्त, सुशील तथा श्रेष्ठ वेदवेत्ता ब्राह्मण शिष्यको चाहिये कि सभी शास्त्रोंके अर्थको तत्त्वतः जाननेवाले, वेदान्तज्ञानमें पारंगत, तथा बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ यति आचार्यके पास जाकर उन्हें दण्डवत् प्रणाम आदिके द्वारा प्रयत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे॥ ३८—४१॥

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
इति निश्चित्य मनसा स्वविचारं निवेदयेत्॥ ४२

जो गुरु हैं, वे ही शिव कहे गये हैं और जो शिव हैं, वे ही गुरु कहे गये हैं—ऐसा मनसे सोचकर अपना विचार निवेदन करना चाहिये॥ ४२॥

लब्धानुज्ञस्तु गुरुणा द्वादशाहं पयोव्रती।
समुद्रतीरे नद्यां च पर्वते वा शिवालये॥ ४३
शुक्लपक्षे तु पञ्चम्यामेकादश्यां तथापि वा।
प्रातः स्नात्वा तु शुद्धात्मा कृतनित्यक्रियः सुधीः॥ ४४
गुरुमाहूय विधिना नान्दीश्राद्धं विधाय च।
क्षौरं च कारयित्वाथ कक्षोपस्थविवर्जितम्॥ ४५
केशश्मश्रुनखानां वै स्नात्वा नियतमानसः।
सक्तुं प्राश्याथ सायाह्ने स्नात्वा सन्ध्यामुपास्य च॥ ४६
सायमौपासनं कृत्वा गुरुणा सहितो द्विजः।
शास्त्रोक्तदक्षिणां दत्त्वा शिवाय गुरुरूपिणे॥ ४७
होमद्रव्याणि संपाद्य स्वसूत्रोक्तविधानतः।
अग्निमाधाय विधिवल्लौकिकादिविभेदतः॥ ४८
आहिताग्निस्तु यः कुर्यात्प्राजापत्येष्टिनाहिते।
श्रौते वैश्वानरे सम्यक् सर्ववेदसदक्षिणम्॥ ४९
अथाग्निमात्मन्यारोप्य ब्राह्मणः प्रव्रजेद् गृहात्।
श्रपयित्वा चरुं तस्मिन्समिदन्नाज्यभेदतः॥ ५०
पौरुषेणैव सूक्तेन हुत्वा प्रत्यृचमात्मवान्।
हुत्वा च सौविष्टकृतीं स्वसूत्रोक्तविधानतः॥ ५१

बुद्धिमान् शिष्यको चाहिये कि गुरुसे आज्ञा प्राप्त करके बारह दिनपर्यन्त केवल दूध पीकर रहे, पुनः समुद्रके तटपर, नदीके किनारे, पर्वतपर अथवा शिवालयमें शुक्लपक्षकी पंचमी अथवा एकादशीके दिन प्रातःकाल स्नान करके शुद्धचित्त होकर नित्यकृत्य करके गुरुको बुलाकर विधिपूर्वक नान्दीश्राद्ध करके कक्ष (काँख) तथा गुह्यस्थानके केशोंको छोड़कर सिर, दाढ़ी, मूँछके बालोंको बनवाकर, नाखून कटवाकर पुनः स्नान करके जितेन्द्रिय हो सन्ध्योपासन करके सत्तूका भोजन करके सायंकाल पुनः स्नानकर सन्ध्योपासन करे। ब्राह्मणको चाहिये कि गुरुके साथ सन्ध्याकालकी उपासना करके गुरुरूपी शिवको शास्त्रोक्त दक्षिणा देकर अपने गृह्यसूत्रमें बताये गये विधानके अनुसार होमद्रव्य लेकर लौकिक आदि भेदसे अग्निका आधान करे। इस प्रकार अग्न्याधान करके जो ब्राह्मण प्राजापत्य यज्ञके अनुसार हवन कर चुका है, वह वेदसहित सम्पूर्ण धनको दक्षिणामें देकर अग्निको आत्मामें धारणकर घरसे संन्यास ग्रहण करे। पुनः चरु तैयार करके समिधा, अन्न, घृतके द्वारा जितेन्द्रिय होकर पुरुषसूक्तकी प्रत्येक ऋचासे हवन उस अग्निमें करके पुनः अपने [गृह्य] सूत्रके अनुसार स्विष्टकृत् आहुतियोंसे हवन करे॥ ४३—५१॥

हुत्वोपरिष्टात्तन्त्रं च तेनाग्नेरुत्तरे बुधः।
स्थित्वासने जपेन्मौनी चैलाजिनकुशोत्तरे।
यावद् ब्राह्ममुहूर्तं तु गायत्रीं दृढमानसः॥ ५२

इस प्रकार हवन करके एकतन्त्रसे अग्निके उत्तरमें उदीच्यकर्म करे। बुद्धिमान् शिष्यको कुशाके ऊपर मृगचर्म एवं उसके ऊपर कपड़ेके आसनपर बैठकर मौन तथा स्थिरचित्त होकर ब्राह्ममुहूर्तपर्यन्त गायत्रीका जप करना चाहिये॥ ५२॥

ततः स्नात्वा यथापूर्वं श्रपयित्वा चरुं ततः।
पौरुषं सूक्तमारभ्य विरजान्तं हुनेद् बुधः॥ ५३

वामदेवमतेनापि शौनकादिमतेन वा।
तत्र मुख्यं वामदेव्यं गर्भयुक्तो यतो मुनिः॥ ५४

होमशेषं समाप्याथ प्रातरौपासनं हुनेत्।
ततोऽग्निमात्मन्यारोप्य प्रातः सन्ध्यामुपास्य च॥ ५५

सवितर्युदिते पश्चात्सावित्रीं प्राविशेत्क्रमात्।
एषणानां त्रयं त्यक्त्वा प्रैषमुच्चार्य च क्रमात्॥ ५६

शिखोपवीते संत्यज्य कटिसूत्रादिकं ततः।
विसृज्य प्राङ्मुखो गच्छेदुत्तराशामुखोऽपि वा॥ ५७

गृह्णीयाद्दण्डकौपीनाद्युचितं लोकवर्तने।
विरक्तश्चेन्न गृह्णीयाल्लोकवृत्तिविचारणे॥ ५८

गुरोः समीपं गत्वाथ दण्डवत्प्रणमेत्त्रयम्।
समुत्थाय ततस्तिष्ठेद् गुरुपादसमीपतः॥ ५९

ततो गुरुः समादाय विरजानलजं सितम्।
भस्म तेनैव तं शिष्यं समुद्धूल्य यथाविधि॥ ६०

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैस्त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः।
हृत्पंकजे समासीनं मां त्वया सह चिन्तयेत्॥ ६१

हस्तं निधाय शिरसि शिष्यस्य प्रीतमानसः।
ऋष्यादिसहितं तस्य दक्षकर्णे समुच्चरेत्॥ ६२

प्रणवं त्रिःप्रकारं तु ततस्तस्यार्थमादिशेत्।
षड्विधार्थं परिज्ञानसहितं गुरुसत्तमः॥ ६३

द्विषट्प्रकारं स गुरुं प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
तदधीनो भवेन्नित्यं वेदान्तं सम्यगभ्यसेत्॥ ६४

मामेव चिन्तयेन्नित्यं परमात्मानमात्मनि।
विशुद्धे निर्विकारे वै ब्रह्मसाक्षिणमव्ययम्॥ ६५

शमादिधर्मनिरतो वेदान्तज्ञानपारगः।
अत्राधिकारी स प्रोक्तो यतिर्विगतमत्सरः॥ ६६

इसके बाद प्रातःकाल स्नान करके चरुका निर्माणकर पुरुषसूक्तसे आरम्भकर विरजापर्यन्त वामदेव अथवा शौनकादिके मतानुसार हवन करे। इनमें वामदेवका मत अधिक श्रेष्ठ है, क्योंकि वामदेवमुनि गर्भमें ही योगयुक्त हो गये थे॥ ५३-५४॥

इसके बाद शेष हवनको समाप्तकर प्रातःकालकी उपासनाका हवन सम्पन्न करे। तदनन्तर आत्मामें अग्निका आरोपणकर प्रातःकालिक सन्ध्योपासन करके सूर्यके उदय हो जानेपर सावित्रीमें क्रमशः प्रवेश करे और तीनों एषणाओं (लोकैषणा, पुत्रैषणा तथा धनैषणा)-का त्यागकर प्रैषोच्चारण करके क्रमसे शिखा, उपवीतका त्याग करके पुनः कटिसूत्र आदिको भी त्यागकर पूर्व अथवा उत्तरदिशाकी ओर मुख करके गमन करना चाहिये और लोकव्यवहारके लिये उचित दण्ड तथा कौपीन आदि धारण करना चाहिये, जिसे लोकव्यवहारका ध्यान न हो, वह इन्हें धारण न भी करे॥ ५५—५८॥

गुरुके समीप जाकर तीन बार दण्डवत् प्रणाम करना चाहिये, पुनः उठकर गुरुके चरणोंके समीप बैठना चाहिये॥ ५९॥

इसके बाद गुरुको चाहिये कि विरजा अग्निसे उत्पन्न श्वेत भस्म लेकर उससे विधिपूर्वक शिष्यके शरीरपर उद्धूलन करके **'अग्निरिति भस्म'** इत्यादि मन्त्रोंसे त्रिपुण्ड्र धारण कराये और हृदयकमलमें स्थित पार्वतीसहित मेरा ध्यान कराये। तत्पश्चात् प्रसन्नचित्त होकर श्रेष्ठ गुरु शिष्यके मस्तकपर अपना हाथ रखकर उसके दाहिने कानमें ऋषि आदिके सहित तीन बार प्रणवका उच्चारण करे और पुनः सविस्तार उसके षड्विध अर्थका समग्रतः उपदेश करे॥ ६०—६३॥

तदनन्तर वह शिष्य गुरुको बारह प्रकारसे भूमिपर दण्डवत् करके उनके अधीन रहकर वेदान्तका नित्य अभ्यास करे और अपने निर्विकार एवं विशुद्ध मनमें सदा मुझ ब्रह्म, साक्षी तथा अव्यय परमात्माका चिन्तन करे। शम आदि धर्मोंमें निरत, वेदान्तज्ञानमें पारंगत तथा ईर्ष्यारहित यति ही इस प्रणवका अधिकारी कहा गया है॥ ६४—६६॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशोकं विशदं परम्।
अष्टपत्रं केशराढ्यं कर्णिकोपरि शोभितम्॥ ६७

आधारशक्तिमारभ्य त्रितत्त्वान्तमयं पदम्।
विचिन्त्य मध्यतस्तस्य दहरं व्योम भावयेत्॥ ६८

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मां त्वया सह।
चिंतयेन्मध्यतस्तस्य नित्यमुद्युक्तमानसः॥ ६९

एवंविधोपासकस्य मल्लोकगतिमेव च।
मत्तो विज्ञानमासाद्य मत्सायुज्यफलं प्रिये॥ ७०

स्वच्छ, शोकरहित, परम उज्ज्वल, अष्टपत्रयुक्त, कर्णिकामें विराजमान मकरन्दयुक्त हृत्कमलके मध्यमें आधारशक्तिसे आरम्भ करके मणिपूरकपर्यन्त दहर आकाशमें त्रितत्त्वयुक्त प्रणवकी भावना करे॥ ६७-६८॥

सावधानचित्त होकर 'ओम्' इस एकाक्षरमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस दहराकाशके मध्य तुम्हारे साथ मेरा स्मरण सदा करता रहे॥ ६९॥

हे प्रिये! इस प्रकारके उपासकको मेरा लोक प्राप्त होता है और वह मुझसे ज्ञान पाकर मेरे सायुज्यका फल प्राप्त कर लेता है॥ ७०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिवर्णन नामक तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः

संन्यासदीक्षासे पूर्वकी आह्निकविधि

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि संन्यासाह्निककर्म च।
तव स्नेहान्महादेवि संप्रदायानुरोधतः॥ १

ब्राह्मे मुहूर्त्त उत्थाय शिरसि श्वेतपंकजे।
सहस्त्रारे समासीनं गुरुं सञ्चिन्तयेद्यतिः॥ २

शुद्धस्फटिकसंकाशं द्विनेत्रं वरदाभये।
दधानं शिवसद्भावमेवात्मनि मनोहरम्॥ ३

भावोपनीतैः संपूज्य गन्धादिभिरनुक्रमात्।
बद्धाञ्जलिपुटो भूत्वा नमस्कुर्याद् गुरुं ततः॥ ४

प्रातःप्रभृति सायान्ते सायादि प्रातरन्ततः।
यत्करोमि महादेव तदस्तु तव पूजनम्॥ ५

प्रतिविज्ञाप्य गुरवे लब्धानुज्ञस्ततो गुरोः।
निरुद्धप्राण आसीनो विजितात्मा जितेन्द्रियः॥ ६

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं षट्चक्रं परिचिन्तयेत्।
विद्युत्कोटिसमप्रख्यं सर्वतेजोमयं परम्॥ ७

तन्मध्ये चिंतयेन्मां च सच्चिदानन्दविग्रहम्।
निर्गुणं परमं ब्रह्म सदाशिवमनामयम्॥ ८

शिवजी बोले—हे महादेवि! अब मैं आपके ऊपर स्नेहके कारण सम्प्रदायोंके अनुसार संन्यास लेनेसे पूर्वके आह्निक कर्मका वर्णन करूँगा॥ १॥

हे महादेवि! ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर यति अपने सिरमें सहस्र दलवाले श्वेत कमलपर बैठे हुए, शुद्ध स्फटिकके समान अत्यन्त निर्मल, दो नेत्रोंवाले, वरद एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए शिवके समान कल्याणकारी एवं अत्यन्त मनोहर स्वरूपवाले गुरुका ध्यान करे। उसके अनन्तर मानसिक भावोंसे लाये गये गन्ध आदिसे क्रमशः पूजन करके हाथ जोड़कर गुरुको नमस्कार करे॥ २—४॥

हे महादेव! प्रातःकालसे सन्ध्यापर्यन्त तथा सन्ध्यासे प्रातःकालपर्यन्त मैं जो कुछ भी करता हूँ, वह सब आपका ही पूजन हो। इस प्रकार गुरुसे निवेदनकर उनसे आज्ञा लेकर प्राणोंको रोक करके मन एवं इन्द्रियोंको वशमें रखकर आसनपर बैठे और मूलाधारसे ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त छः चक्रोंका ध्यान करे। उनके मध्यमें करोड़ों विद्युत्के समान कान्ति-वाले, सर्वतेजोमय, सच्चिदानन्दस्वरूप, निर्गुण, निर्विकार, परब्रह्मरूप मुझ सदाशिवका चिन्तन करे॥ ५—८॥

सोऽहमस्मीति मतिमान्मदैक्यमनुभूय च।
बहिर्निर्गत्य च ततो दूरं गच्छेद्यथासुखम्॥ ९

उसके अनन्तर उस बुद्धिमान्‌को चाहिये कि 'वह मैं ही हूँ'—इस प्रकार मेरे साथ एकताका अनुभव करके बाहर निकलकर सुविधानुरूप दूर चला जाय॥ ९॥

वस्त्रेणाच्छाद्य मतिमाञ्छिरो नासिकया सह।
विशोध्य देहं विधिवत्तृणमाधाय भूतले॥ १०

गृहीतशिश्न उत्थाय ततो गच्छेज्जलाशयम्।
उद्धृत्य वार्यथान्यायं शौचं कुर्यादतन्द्रितः॥ ११

हस्तौ पादौ च संशोध्य द्विराचम्योमिति स्मरन्।
उत्तराभिमुखो मौनी दन्तधावनमाचरेत्॥ १२

वह बुद्धिमान् [शिष्य] वस्त्रसे नासिका तथा सिरको ढँककर पृथ्वीपर तृण रखकर विधिवत् शौच करके वहाँसे उठकर शिश्नको हाथसे पकड़े हुए जलाशयकी ओर जाय और उचित रीतिसे जल लेकर सावधान हो विधिपूर्वक शुद्धि करे। पुनः हाथ-पैर धोकर 'ॐ' इस मन्त्रका स्मरण करता हुआ दो बार आचमन करके मौन धारणकर उत्तराभिमुख हो दन्तधावन करे॥ १०—१२॥

तृणपर्णैः सदा कुर्यादमामेकादशीं विना।
अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखं संशोधयेत्ततः॥ १३

द्विराचम्य मृदा तोयैः कटिशौचं विधाय च।
अरुणोदयकाले तु स्नानं कुर्यान्मृदा सह॥ १४

एकादशी तथा अमावास्याको छोड़कर तृण तथा पत्ते (डण्ठल आदि)-से सदा दन्तधावन करे, इसके बाद जलसे बारह कुल्लाकर मुखको शुद्ध करे, पुनः दो बार आचमनकर मिट्टी तथा जलसे कटिपर्यन्त शरीरभागको शुद्ध करके सूर्योदयके समय मिट्टीका लेपनकर स्नान करे॥ १३-१४॥

गुरुं संस्मृत्य मां चैव स्नानसंध्याद्यमाचरेत्।
विस्तारभयतो नोक्तमत्र द्रष्टव्यमन्यतः॥ १५

गुरुका तथा मेरा स्मरण करते हुए स्नान-सन्ध्या आदि करना चाहिये। इस विषयमें विस्तारके भयसे अधिक नहीं कहा गया है, इसे अन्यत्र देख लेना चाहिये॥ १५॥

आबध्य शंखमुद्रां च प्रणवेनाभिषेचयेत्।
शिरसि द्वादशावृत्त्या तदर्धं वा तदर्धकम्॥ १६

तीरमागत्य कौपीनं प्रक्षाल्याचम्य च द्विधा।
प्रोक्षयेत्प्रणवेनैव वस्त्रमङ्गोपमार्जनम्॥ १७

शंखमुद्रा बाँधकर प्रणवसे सिरपर बारह बार, उसका आधा छः बार अथवा उसका भी आधा तीन बार जल छिड़के। उसके अनन्तर किनारेपर आकर कौपीनका प्रक्षालनकर दो बार आचमन करके प्रणवसे ही वस्त्रपर जल छिड़के तथा अंगोंका मार्जन करे॥ १६-१७॥

मुखं प्रथमतो मृज्य शिर आरभ्य सर्वतः।
तेनैव मार्जयेद्देहं स्थित्वा च गुरुसन्निधौ॥ १८

आबध्याद् वामतः शुद्धं कौपीनं च सडोरकम्।
ततः संधारयेद्भस्म तद्विधिः प्रोच्यतेऽद्रिजे॥ १९

सबसे पहले अँगोछेसे मुख पोंछकर बादमें सिरसे लेकर सम्पूर्ण देहको पोंछे। इसके बाद गुरुके समीप ही स्थित हो शुद्ध कौपीन धारणकर डोरेसे बाँध ले। पुनः भस्म धारण करे, हे प्रिये! उसकी विधि कह रहा हूँ॥ १८-१९॥

द्विराचम्य समादाय भस्म सद्यादिमन्त्रतः।
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैरभिमन्त्र्य स्पृशेत्तनुम्॥ २०

आपोवेत्यभिमन्त्र्याथ जलं तेनैव सेचयेत्।
ओमापोज्योतिरित्युक्त्वा मानस्तोकेति मन्त्रतः॥ २१

दो बार आचमन करके **सद्योजात०** इस आद्य मन्त्रसे भस्म ग्रहण करके **अग्निरिति०** इत्यादि मन्त्रोंसे उसे अभिमन्त्रित करते हुए शरीरका स्पर्श करे। इसके बाद **'आपो वा'** इस मन्त्रसे भस्ममें जल मिलाये। पुनः **ॐ आपो ज्योतिः**—इस मन्त्रको

सम्मर्द्य कवलद्वन्द्वं कुर्यादेकं तु पञ्चधा।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषु परमेश्वरि॥ २२

ईशानादि समारभ्य सद्यान्तं पञ्चभिः क्रमात्।
उद्धूल्य कवलं पश्चात्प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ २३

सर्वाङ्गं च ततो हस्तौ प्रक्षाल्यान्यत्समाहरेत्।
सम्मर्द्य पूर्ववत्तत्तु त्रिपुण्ड्रांस्तेन धारयेत्॥ २४

त्रियायुषैस्त्र्यम्बकैश्च प्रणवेन शिवेन च।
शिरस्यथ ललाटे च वक्षसि स्कन्ध एव च॥ २५

नाभौ बाह्वोः संधिषु च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्।
प्रक्षाल्य हस्तौ च ततो द्विराचम्य यथाविधि॥ २६

पञ्चीकरणमुच्चार्य भावयेत्स्वगुरुं बुधः।
वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणायामान्षडाचरेत्॥ २७

पढ़कर **मानस्तोके**—इस मन्त्रसे [भस्मको] मसलकर कवलके आकारके दो पिण्ड बनाये। फिर एकके पाँच भाग करे। हे परमेश्वरि! उसे सिर, मुख, हृदय, गुह्यस्थान तथा चरणमें ईशानसे लेकर सद्योजातपर्यन्त पाँच मन्त्रोंसे क्रमशः लगाकर बादमें प्रणवसे अभिषेक करे। इसके साथ सभी अंगोंको तथा तत्पश्चात् दोनों हाथोंको धोकर दूसरा पिण्ड ग्रहण करे और पहलेकी तरह मसलकर उससे त्रिपुण्ड्र धारण करे, **'त्र्यायुषं जमदग्नेः'**, **'त्र्यम्बकं यजामहे'**, प्रणव अथवा अन्य शिवमन्त्रके द्वारा सिर, ललाट, वक्षःस्थल, कन्धा, नाभि, दोनों बाहुओं, सन्धियों तथा पीठपर क्रमशः भस्म लगाये। इसके बाद दोनों हाथ धोकर यथाविधि दो बार आचमन करके पंचाक्षर मन्त्रका उच्चारणकर वह विद्वान् [शिष्य] अपने गुरुका ध्यान करे और आगे कही जानेवाली विधिके अनुसार छः प्राणायाम करे॥ २०—२७॥

दक्षहस्तेन सङ्गृह्य जलं वामेन पाणिना।
समाच्छाद्य द्विषड्वारं प्रणवेनाभिमन्त्रयेत्॥ २८
एवं त्रिवारं संप्रोक्ष्य शिरसि त्रिः पिबेत्ततः।
समाहितेन मनसा ध्यायन्नोङ्कारमीश्वरम्॥ २९
सौरमण्डलमध्यस्थं सर्वतेजोमयं परम्।
अष्टबाहुं चतुर्वक्त्रमर्द्धनारीकमद्भुतम्॥ ३०
सर्वाश्चर्यगुणोपेतं सर्वालंकारशोभितम्।
एवं ध्यात्वाथ विधिवद्दद्यादर्घ्यत्रयं ततः॥ ३१

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे बायें हाथसे ढँककर बारह बार प्रणवमन्त्र पढ़कर उसे अभिमन्त्रित करे। इसके बाद तीन बार उसे अपने सिरपर छिड़ककर तीन बार उसका पान करे और एकाग्र मनसे सूर्यमण्डलमें स्थित, सर्वतेजोमय, आठ भुजावाले, चार मुखसे युक्त, अर्धनारीश्वर, अद्भुत स्वरूपवाले, सम्पूर्ण आश्चर्यमय गुणोंसे युक्त तथा सभी अलंकारोंसे सुशोभित ओंकाररूपी ईश्वरका ध्यान करे॥ २८—३०१/२॥

अष्टोत्तरशतं जप्त्वा द्विषड्वारं तु तर्पयेत्।
पुनराचम्य विधिवत्प्राणायामत्रयं चरेत्॥ ३२

इस प्रकार ध्यान करके विधिपूर्वक तीन बार अर्घ्य दे। इसके बाद एक सौ आठ बार [शिवमन्त्रका] जप करके बारह बार तर्पण करे, पुनः विधिवत् आचमनकर तीन प्रणायाम करे॥ ३१-३२॥

पूजासदनमागच्छेन्मनसा संस्मरन् शिवम्।
द्वारमासाद्य प्रक्षाल्य पादौ मौनी द्विराचमेत्॥ ३३

प्रविशेद्विधिना तत्र दक्षपादपुरःसरम्।
मण्डपान्तः सुधीस्तत्र मण्डलं रचयेत्क्रमात्॥ ३४

तदनन्तर मनसे शिवजीका स्मरण करते हुए पूजास्थानमें आये, वहाँ द्वारपर दोनों पैर धो करके मौन होकर दो बार आचमन करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि दाहिना चरण आगे करके पूजामण्डपमें विधिवत् प्रवेश करे और वहाँ क्रमसे मण्डलकी रचना करे॥ ३३-३४॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासाचारवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासाचारवर्णन नामक चौथा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ४॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः

संन्यासदीक्षाहेतु मण्डलनिर्माणकी विधि

ईश्वर उवाच

परीक्ष्य विधिवद्भूमिं गंधवर्णरसादिभिः।
मनोऽभिलषिते तत्र वितानविततामम्बरे॥ १
सुप्रलिप्ते महीपृष्ठे दर्पणोदरसन्निभे।
अरत्नियुग्ममानेन चतुरस्रं प्रकल्पयेत्॥ २

तालपत्रं समादाय तत्समायामविस्तरम्।
तस्मिन्भागान्प्रकुर्वीत त्रयोदशसमां कलाम्॥ ३
तत्पत्रं तत्र निःक्षिप्य पश्चिमाभिमुखः स्थितः।
तत्पूर्वभागे सुदृढं सूत्रमादाय रंजितम्॥ ४
प्राक् प्रत्यग् दक्षिणोदक् च चतुर्दिशि निपातयेत्।
सूत्राणि देवदेवेशि नवषष्ट्युत्तरं शतम्॥ ५
कोष्ठानि स्युस्ततस्तस्य मध्यकोष्ठं तु कर्णिका।
कोष्ठाष्टकं बहिस्तस्य दलाष्टकमिहोच्यते॥ ६

ईश्वर बोले—भूमिके गन्ध, वर्ण, रस आदिकी भलीभाँति परीक्षाकर वहाँ अपने मनके अनुकूल स्थानपर वस्त्रका विशाल चँदोवा लगाकर दर्पणतलके तुल्य [सम तथा स्निग्ध] पृथ्वीतलपर दो हाथ प्रमाणके चौकोर मण्डलका निर्माण करे॥ १-२॥

ताड़का पत्ता लेकर उसीके समान लम्बे एवं चौड़े स्थानमें बराबर तेरह भाग करे। उस ताड़पत्रको वहीं रखकर पश्चिमकी ओर मुख करके बैठे और रँगा हुआ सुदृढ़ धागा लेकर उसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण—चारों दिशाओंमें लपेटे। हे देवदेवेशि! इस प्रकार करनेसे उस मण्डलके एक सौ उनहत्तर कोष्ठक हो जायँगे। उसके मध्यका कोष्ठक कर्णिका है, उसके बाहरके आठ कोष्ठक आठ दल कहे जाते हैं॥ ३—६॥

दलानि श्वेतवर्णानि समग्राणि प्रकल्पयेत्।
पीतरूपां कर्णिकां च कृत्वारक्तं च वृत्तकम्॥ ७

वनभिद्दलदक्षं तु समारभ्य सुरेश्वरि।
रक्तकृष्णाः क्रमेणैव दलसन्धीन्विचित्रयेत्॥ ८

सभी दलोंको श्वेत वर्णका बनाये। कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये और उसके चारों ओर लाल रंगका वृत्त बनाकर हे सुरेश्वरि! [उस अष्टदल] कमलके दलोंके दाहिनी ओरसे आरम्भ करके दलोंके सन्धिस्थानको क्रमसे लाल तथा काले रंगसे रँगना चाहिये॥ ७-८॥

कर्णिकायां लिखेद् यन्त्रं प्रणवार्थप्रकाशकम्।
अधः पीठं समालिख्य श्रीकण्ठं च तदूर्ध्वतः॥ ९

तदुपर्यमरेशं च महाकालं च मध्यतः।
तन्मस्तकस्थं दण्डं च तत ईश्वरमालिखेत्॥ १०

श्यामेन पीठं पीतेन श्रीकण्ठं च विचित्रयेत्।
अमरेशं महाकालं रक्तं कृष्णं च तौ क्रमात्॥ ११

कुर्यात्सुधूम्रं दण्डं च धवलं चेश्वरं बुधः।
एवं यन्त्रं समालिख्य रक्तं सद्येन वेष्टयेत्॥ १२

कर्णिकामें प्रणवार्थको प्रकाशित करनेवाला यन्त्र लिखे। पुनः नीचेकी ओर पीठ और उसके ऊपर श्रीकण्ठ लिखकर उसके ऊपर अमरेश, मध्यमें महाकाल और महाकालके मस्तकके समीप दण्ड लिखकर फिर ईश्वरको लिखे। श्याम रंगसे पीठ और पीत रंगसे श्रीकण्ठको चित्रित करे। अमरेश और महाकालको क्रमशः लाल तथा काले रंगसे चित्रित करे। बुद्धिमान्‌को चाहिये कि दण्डको धूमवर्ण तथा ईश्वरको धवलवर्णका बनाये। इस प्रकार रंग भरकर बनाये गये यन्त्रको सद्योजात मन्त्रसे वेष्टित कर दे॥ ९—१२॥

तदुत्थेनैव नादेन भिन्द्यादीशानमीश्वरि।
तद्बाह्यपङ्क्तीर्गृह्णीयादाग्नेयादिक्रमेण वै॥ १३

हे ईश्वरि! उस मन्त्रसे उठे हुए नादसे ईशानका भेदन करे और आग्नेय आदिके क्रमसे उनकी बाह्य पंक्तियोंको ग्रहण करे॥ १३॥

कोष्ठानि कोणभागेषु चत्वार्येतानि सुन्दरि।
शुक्लेनापूर्य वर्णादि चतुष्कं रक्तधातुभिः॥ १४
आपूर्य तानि चत्वारि द्वाराणि परिकल्पयेत्।
ततस्तत्पार्श्वयोर्द्वन्द्वं पीतेनैव प्रपूरयेत्॥ १५

हे सुन्दरि! उन कोणोंके चार कोष्ठकोंको श्वेत तथा लाल धातुओंसे रँगकर चार द्वारोंकी परिकल्पना करे। उनके बगलके दोनों कोष्ठकोंको पीले रंगसे परिपूर्ण करना चाहिये॥ १४-१५॥

आग्नेयकोष्ठमध्ये तु पीताभे चतुरस्रके।
अष्टपत्रं लिखेत्पद्मं रक्ताभं पीतकर्णिकम्॥ १६

आग्नेय कोणके कोष्ठके मध्यभागमें पीतवर्णवाले चौकोर स्थानमें लालरंगके अष्टदल कमलका निर्माण करना चाहिये और उसकी कर्णिकाको पीले रंगसे रँगना चाहिये॥ १६॥

हकारं विलिखेन्मध्ये बिन्दुयुक्तं समाहितः।
पद्मस्य नैर्ऋते कोष्ठे चतुरस्रं तदा लिखेत्॥ १७
पद्ममष्टदलं रक्तं पीतकिञ्जल्ककर्णिकम्।
शवर्गस्य तृतीयं तु षष्ठस्वरसमन्वितम्॥ १८

तत्पश्चात् सावधान होकर उसके मध्यमें बिन्दुयुक्त हकार लिखे। उस कमलके नैर्ऋत्यकोणवाले कोष्ठकमें चौकोर [वृत्तवाला] रक्तवर्णका अष्टदल कमल बनाये और उसकी कर्णिकाओंमें पीला रंग भर दे। उसमें शवर्गके तीसरे अक्षर 'स' को छठे स्वर 'ऊ' से युक्त करके 'सू' लिखे॥ १७-१८॥

चतुर्दशस्वरोपेतं बिन्दुनादविभूषितम्।
एतद् बीजवरं भद्रे पद्ममध्ये समालिखेत्॥ १९

हे भद्रे! बिन्दु-नादसे युक्त चौदहवाँ स्वर 'औं'—इस श्रेष्ठ बीजमन्त्रको पद्मके मध्यमें लिखे॥ १९॥

पद्मस्येशानकोष्ठे तु तथा पद्मं समालिखेत्।
कवर्गस्य तृतीयं तु पञ्चमस्वरसंयुतम्॥ २०
विलिखेन्मध्यतस्तस्य बिन्दुं कण्ठे स्वलङ्कृतम्।
तद्बाह्यपंक्तित्रितये पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ २१
कोष्ठानि पञ्च गृह्णीयाद्गिरिराजसुते शिवे।
मध्ये तु कर्णिकां कुर्यात्पीतां रक्तं च वृत्तकम्॥ २२

इसी प्रकार पद्मके ईशानकोणवाले कोष्ठकमें भी रक्तवर्णका वैसा ही कमल बनाये और उसमें कवर्गके तीसरे अक्षर 'ग' को पंचम स्वरसे युक्त करके 'गु' लिखे। उस वर्णके कण्ठभागमें बिन्दु लिखे। हे पार्वति! हे शिवे! इसकी बाहरवाली तीन पंक्तियोंमें पूर्वादि दिशाके क्रमसे चारों ओरके पाँच कोष्ठ ग्रहण करे और उसके मध्यमें कर्णिकाको पीला करे एवं वृत्तको रक्तवर्णका कर दे॥ २०—२२॥

दलानि रक्तवर्णानि कल्पयेत्कल्पवित्तमः।
दलबाह्ये तु कृष्णेन रंध्राणि परिपूरयेत्॥ २३
आग्नेयादीनि चत्वारि शुक्लेनैव प्रपूरयेत्।
पूर्वे षड्बिन्दुसहितं षट्कोणं कृष्णमालिखेत्॥ २४

इसकी विधि जाननेवालेको चाहिये कि कमल-दलोंको लाल बनाये और दलोंके बाहरवाले छिद्रोंको काले रंगसे भर दे। आग्नेय आदि चारों कोनोंको सफेद रंगसे परिपूर्ण करे। पूर्वकी ओर छः बिन्दुसे युक्त षट्कोणको काले रंगसे लिखे॥ २३-२४॥

रक्तवर्णं दक्षिणतस्त्रिकोणं चोत्तरे ततः।
श्वेताभमर्द्धचन्द्रं च पीतवर्णं च पश्चिमे॥ २५
चतुरस्रं क्रमात्तेषु लिखेद्बीजं चतुष्टयम्।
पूर्वे बिन्दुं समालिख्य शुभ्रं कृष्णं तु दक्षिणे॥ २६
उकारमुत्तरे रक्तं मकारं पश्चिमे ततः।
अकारं पीतमेवं तु कृत्वा वर्णचतुष्टयम्॥ २७
सर्वोर्ध्वपंक्त्यधः पंक्तौ समारभ्य च सुन्दरि।
पीतं श्वेतं च रक्तं च कृष्णं चेति चतुष्टयम्॥ २८

दक्षिण कोष्ठकमें रक्तवर्ण त्रिकोण, उत्तरकोष्ठकमें श्वेताभ अर्धचन्द्र, पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण चतुरस्र अंकित करके क्रमशः चार बीज लिखे। पूर्वकोष्ठकमें शुक्लवर्ण बिन्दु, दक्षिणकोष्ठकमें कृष्णवर्ण उकार, उत्तरकोष्ठकमें रक्तवर्ण मकार और पश्चिम कोष्ठकमें पीतवर्ण अकार लिखे। हे सुन्दरि! सबसे ऊपरकी पंक्तिसे नीचेवाली पंक्तिमें पीला, श्वेत, लाल और काला—ये चारों रंग भरे॥ २५—२८॥

तदधो धवलं श्यामं पीतं रक्तं चतुष्टयम्।
अधस्त्रिकोणके रक्तं शुक्लं पीतं वरानने॥ २९

एवं दक्षिणमारभ्य कुर्यात्सोमान्तमीश्वरि।
तद्बाह्यपंक्तौ पूर्वादिमध्यमान्तं विचित्रयेत्॥ ३०

पीतं रक्तं च कृष्णं च श्यामं श्वेतं च पीतकम्।
आग्नेयादि समारभ्य रक्तं श्यामं सितं प्रिये॥ ३१

रक्तं कृष्णं च रक्तं च षट्कमेवं प्रकीर्तितम्।
दक्षिणाद्यं महेशानि पूर्वावधि समीरितम्॥ ३२

नैर्ऋताद्यं तु विज्ञेयमाग्नेयावधि चेश्वरि।
वारुणं तु समारभ्य दक्षिणावधि चेरितम्॥ ३३

वायव्याद्यं महादेवि नैर्ऋतावधि चेरितम्।
सोमाद्यं परमेशानि वारुणावधि चेरितम्॥ ३४

ईशानाद्यं तु विज्ञेयं वायव्यावधि चाम्बिके।
इत्युक्तो मण्डलविधिर्मया तुभ्यं च पार्वति॥ ३५

एवं मण्डलमालिख्य नियतात्मा यतिः स्वतः।
सौरपूजां प्रकुर्वीत स हि तद्वस्तुतत्परः॥ ३६

उसके नीचे श्वेत, श्याम, पीत एवं रक्त रंगसे रँगे। हे वरानने! नीचेके त्रिकोणमें लाल, सफेद और पीला रंग भरे। हे ईश्वरि! इस प्रकार दक्षिणसे प्रारम्भकर उत्तर दिशातक चित्रण करे। उसकी बाहरी पंक्तिमें पूर्वसे मध्यभागतक पीला, लाल, काला, श्याम, श्वेत, पीतवर्ण चित्रित करे। हे प्रिये! रक्त, श्याम, श्वेत, लाल, कृष्ण, लाल—ये छः रंग कहे गये हैं। आग्नेयकोणसे आरम्भकर [वायुकोणपर्यन्त] इन रंगोंका क्रमशः प्रयोग करे। हे महेशानि! दक्षिणसे लेकर पूर्वपर्यन्त ये सब बताये गये हैं। हे ईश्वरि! वैसे ही नैर्ऋत्यदिशासे लेकर आग्नेयदिशापर्यन्त जानना चाहिये, उसी रीतिसे पश्चिमदिशासे लेकर दक्षिणदिशा-पर्यन्त भी कहा गया है। हे महादेवि! वायव्यसे लेकर नैर्ऋत्यदिशातक यह क्रम कह दिया। इसी प्रकार परमेशानि! पूर्वसे लेकर पश्चिम दिशातक कहा गया। हे अम्बिके! उत्तरसे लेकर वायव्यतक यह क्रम जानना चाहिये। हे पार्वति! इस प्रकार मैंने मण्डलकी विधि आपसे कह दी। जितेन्द्रिय यतिको चाहिये कि स्वयं इस प्रकार मण्डल लिखकर ब्रह्ममें तत्पर हो सौरपूजा करे॥ २९—३६॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासमण्डलविधिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासमण्डलविधिवर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

पूजाके अंगभूत न्यासादि कर्म

ईश्वर उवाच

दक्षिणे मण्डलस्याथ वैयाघ्रं चर्म शोभनम्।
आस्तीर्य शुद्धतोयेन प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ १

प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य पश्चादाधारमुद्धरेत्।
तत्पश्चाच्छक्तिकमलं चतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तकम्॥ २

मनुमेवं समुच्चार्य स्थित्वा तस्मिन्नुदङ्मुखः।
प्राणानायम्य विधिवत्प्रणवोच्चारपूर्वकम्॥ ३

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैर्भस्म संधारयेत्ततः।
शिरसि श्रीगुरुं नत्वा मण्डलं रचयेत्पुनः॥ ४

ईश्वर बोले—मण्डलके दक्षिणमें मनोहर व्याघ्रचर्म बिछाकर अस्त्र-मन्त्रके द्वारा शुद्ध जलसे उसका प्रोक्षण करे। पहले प्रणवका उद्धार करके बादमें आधारका उद्धार करे। उसके अनन्तर शक्तिकमलका उद्धार करे। इन सबमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें नमः पदका प्रयोग करे। इस प्रकार मन्त्रका उच्चारण करके वहाँपर उत्तरकी ओर मुख करके बैठकर प्रणवका उच्चारण करते हुए विधिवत् प्राणायाम करे॥ १—३॥

'अग्निरिति भस्म०' इत्यादि मन्त्रका उच्चारणकर मस्तकपर भस्म लगाये, उसके बाद गुरुको नमस्कारकर

त्रिकोणवृत्तं बाह्ये तु चतुरस्रात्मकं क्रमात्।
अभ्यर्च्योमिति साधारं स्थाप्य शंखं समर्चयेत्॥ ५

मण्डलकी रचना करे। मण्डलमें त्रिकोण तथा वृत्तकी रचनाकर उसे चतुरस्रके द्वारा बाहरसे आवेष्टित करे। फिर '**ओम्**' मन्त्रसे उसपर आधारसहित शंख रखकर उसकी भी अर्चना करे॥ ४-५॥

आपूर्य शुद्धतोयेन प्रणवेन सुगन्धिना।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा॥ ६
अभिमन्त्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्।
शंखमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ ७
आत्मानं गन्धपुष्पादिपूजोपकरणानि च।
प्राणायामत्रयं कृत्वा ऋष्यादिकमथाचरेत्॥ ८
अस्य श्रीसौरमन्त्रस्य देवभाग ऋषिस्ततः।
छन्दो गायत्रमित्युक्तं देवः सूर्यो महेश्वरः॥ ९
देवता स्यात्षडङ्गानि ह्रामित्यादीनि विन्यसेत्।

तदनन्तर प्रणवका उच्चारणकर शुद्ध तथा सुगन्धित जलसे शंखको पूर्ण करके [प्रणवका उच्चारणकर] गन्ध-पुष्पादिसे शंखका पूजन करके पुनः सात बार प्रणवसे अभिमन्त्रितकर धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्रा प्रदर्शित करे। पुनः अस्त्रमन्त्रसे अपना तथा गन्ध, पुष्प आदि पूजा-सामग्रियोंका प्रोक्षण करे। इसके बाद तीन बार प्राणायाम करके ऋषि आदिका न्यास करे। इस सौरमन्त्रके देवभाग ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और सूर्यरूप महेश्वर इसके देवता हैं॥ ६—९१/२॥

ततः संप्रोक्षयेत्पद्ममस्त्रेणाग्नेरगोचरम्॥ १०
तस्मिन्समर्चयेद्विद्वान् प्रभूतां विमलामपि।
सारां चाथ समाराध्य पूर्वादिपरतः क्रमात्॥ ११

'ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः' इत्यादि मन्त्रोंसे न्यास करे। फिर अस्त्रमन्त्रसे आग्नेय कोणके कमलको प्रोक्षित करे। विद्वान् पुरुष उस कमलपर पूर्वादि क्रमसे प्रभूता, विमला तथा साराकी आराधनाकर उनका पूजन करे॥ १०-११॥

अथ कालाग्निरुद्रं च शक्तिमाधारसंज्ञिताम्।
अनन्तं पृथिवीं चैव रत्नद्वीपं तथैव च॥ १२
संकल्प्य वृक्षोद्यानं च गृहं मणिमयं ततः।
रत्नपीठं च संपूज्य पादेषु प्रागुपक्रमात्॥ १३
धर्मं ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च चतुष्टयम्।
अधर्माद्यग्निकोणादिकोणेषु च समर्चयेत्॥ १४

इसके बाद कालाग्निरुद्र, आधारशक्ति, अनन्त, पृथ्वी, मणिद्वीप, कल्पवृक्षका उद्यान, मणिमय गृह एवं रत्नपीठकी पूजाकर उसके पादस्थानमें चारों ओर पूर्वादि क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्यका तथा आग्नेयादि चार कोणोंमें अधर्म आदिका पूजन करे॥ १२—१४॥

मायाधश्छदनं पश्चाद्विद्योर्ध्वच्छदनं ततः।
सत्त्वं रजस्तमश्चैव समभ्यर्च्य यथाक्रमम्॥ १५
पूर्वादिदिक्षु मध्ये च दीप्तां सूक्ष्मां जयामपि।
भद्रां विभूतिं विमलाममोघां वैद्युतामपि॥ १६

माया [बीज]-से नीचेके भागका आच्छादन और विद्या [बीज]-से ऊर्ध्वभागका आच्छादनकर पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः सत्त्व, रज तथा तमका पूजन करे एवं मध्यमें क्रमशः दीप्ता, सूक्ष्मा, जया, भद्रा, विभूति, विमला, अमोघा और विद्युताकी भी पूजा करे॥ १५-१६॥

सर्वतोमुखसंज्ञां च कन्दनालं तथैव च।
सुषिरं च ततस्तं तु कंटकांस्तदनन्तरम्॥ १७
मूलच्छदनकिञ्जल्कप्रकाशसकलात्मनः।
पञ्चग्रन्थिकर्णिकां च दलानि तदनन्तरम्॥ १८
केशरान् ब्रह्मविष्णू च रुद्रमात्मानमेव च।
अन्तरात्मानमपि च ज्ञानात्मपरमात्मनि॥ १९
सम्पूज्य पश्चात्सौराख्यं योगपीठं समर्चयेत्।
पीठोपरि समाकल्प्य मूर्तिं मूलेन मूलवित्॥ २०

इसके बाद सर्वतोमुख, कन्दनाल, सुषिर, कण्टक, मूल, पत्र, किंजल्क तथा आत्मप्रकाशका पूजन करे, फिर पंचग्रन्थि, कर्णिका, कमलदल तथा केसरोंका पूजन करे। तदनन्तर कमलके केसरपर ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञानात्मा तथा परमात्माका पूजनकर सौर नामक योगपीठकी पूजा करे। तदुपरान्त मन्त्रवेत्ता सिंहासनके ऊपर मूलमन्त्रसे मूर्तिकी स्थापना करे॥ १७—२०॥

निरुद्धप्राण आसीनो मूलेनैव स्वमूलतः।
शक्तिमुत्थाप्य तत्तेन प्रभावात्पिङ्गलाध्वना॥ २१

तत्पश्चात् संयतप्राण होकर उसी मूलमन्त्रसे मूलाधारमें स्थित आधारशक्तिको पिंगलानाडीके मार्गसे ऊपर उठाये॥ २१॥

पुष्पाञ्जलौ निर्गमय्य मण्डलस्थस्य भास्वतः।
सिन्दूरारुणदेहस्य वामार्धदयितस्य च॥ २२

अक्षस्त्रक्पाशखट्वाङ्गकपालाङ्कुशपङ्कजम्।
शंखं चक्रं दधानस्य चतुर्वक्त्रस्य लोचनैः॥ २३

राजितस्य द्वादशभिस्तस्य हृत्पङ्कजोदरे।
प्रणवं पूर्वमुद्धृत्य ह्रां ह्रीं सस्तदनन्तरम्॥ २४

मण्डलमें स्थित अत्यन्त तेजस्वी तथा सिन्दूरके समान अरुणवर्णवाले पार्वतीसहित अर्धनारीश्वर भगवान्‌को पुष्पांजलिमें आकृष्ट करे, जिनके हाथोंमें रुद्राक्षकी माला, पाश, खट्वांग, कपाल, अंकुश, कमल, शंख और चक्र विराजमान हैं, जिनके चार मुख और बारह नेत्र हैं, उन सौररूप महादेवके हृदयकमलके मध्यमें सर्वप्रथम प्रणवका उद्धार करके पुनः **ह्रां ह्रीं** सःका उद्धार करे॥ २२—२४॥

प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डं च ततः परम्।
आवाहयामि नम इत्यावाह्यावाहनाख्यया॥ २५

मुद्रया स्थापनाद्याश्च मुद्राः संदर्शयेत्ततः।
विन्यस्याङ्गानि ह्रां ह्रीं ह्रूं अन्तेन मनुना ततः॥ २६

तत्पश्चात् '**प्रकाशशक्तिसहितं मार्तण्डमावाहयामि नमः**' इस मन्त्रसे सूर्यरूप महेश्वरका आवाहन करके आवाहनी नामक मुद्राके द्वारा स्थापन [आदि क्रियाएँ सम्पन्न]-कर मुद्रा प्रदर्शित करे। **ह्रां, ह्रीं, ह्रूं, ह्रैं, ह्रौं, ह्रः**—इन मन्त्रोंसे अंगन्यास तथा करन्यास करे॥ २५-२६॥

पञ्चोपचारान्संकल्प्य मूलेनाभ्यर्चयेत् त्रिधा।
केशरेषु च पद्मस्य षडंगानि महेश्वरि॥ २७

वह्नीशरक्षोवायूनां परितः क्रमतः सुधीः।
द्वितीयावरणे पूज्याश्चतस्रो मूर्तयः क्रमात्॥ २८

पंचोपचारोंको परिकल्पित करके पद्मकेसरोंमें मूल-मन्त्रसे षडंग (ह्रां, ह्रीं आदि)-की तीन बार अर्चना करे। हे महेश्वरि! तदुपरान्त विज्ञ साधक अग्नि, ईश्वर, राक्षस, वायु आदि चारों मूर्तियोंका क्रमशः दूसरे आवरणमें पूजन करे॥ २७-२८॥

पूर्वाद्युत्तरपर्यन्तं दलमूलेषु पार्वति।
आदित्यो भास्करो भानू रविश्चेत्यनुपूर्वशः॥ २९
अर्को ब्रह्मा तथा रुद्रो विष्णुश्चेति पुनः प्रिये।
ईशानादिषु संपूज्यास्तृतीयावरणे पुनः॥ ३०
सोमं कुजं बुधं जीवं कविं मंदं तमस्तमः।
समन्ततो यजेदेतान्पूर्वादिदलमध्यतः॥ ३१
अथवा द्वादशादित्यान्द्वितीयावरणे यजेत्।
तृतीयावरणे चैव राशीन्द्वादश पूजयेत्॥ ३२

हे पार्वति! पूर्वसे लेकर उत्तर दलके मूल भागतकमें आदित्य, भास्कर, भानु तथा रविका एवं ईशानादि चारों कोणोंमें अर्क, ब्रह्मा, रुद्र तथा विष्णुका इसी प्रकार तृतीय आवरणमें पूजन करे। पूर्वादि दलोंके मध्यमें सोम, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु तथा केतुका पूजन करना चाहिये अथवा द्वितीय आवरणमें ही द्वादश आदित्योंका पूजन करे। तीसरे आवरणमें बारह राशियोंका पूजन करे॥ २९—३२॥

सप्तसागरगङ्गाश्च बहिरस्य समन्ततः।
ऋषीन्देवांश्च गंधर्वान्पन्नगानप्सरोगणान्॥ ३३
ग्रामण्यश्च तथा यक्षान्यातुधानांस्तथा हयान्।
सप्तच्छन्दोमयांश्चैव बालखिल्यांश्च पूजयेत्॥ ३४

इसके बाहर चारों ओर सप्तसागर, गंगा, ऋषि, देवता, गन्धर्व, पन्नग, अप्सराएँ, ग्रामणी, यक्ष, यातुधान, सप्तछन्दरूप सात घोड़े तथा बालखिल्योंका भी पूजन करे॥ ३३-३४॥

एवं त्र्यावरणं देवं समभ्यर्च्य दिवाकरम्।
विरच्य मंडलं पश्चाच्चतुरस्त्रं समाहितः॥ ३५

इस प्रकार तीन आवरणवाले दिवाकर देवका पूजनकर समाहितचित्त हो चौकोर मण्डलका निर्माण करे। पुष्प आदिसे सुवासित शुद्ध जलसे परिपूर्ण,

स्थाप्य साधारकं ताम्रपात्रं प्रस्थोदविस्तृतम्।
पूरयित्वा जलैः शुद्धैर्वासितैः कुसुमादिभिः॥ ३६
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैर्जानुभ्यामवनिं गतः।
अर्घ्यपात्रं समादाय भ्रूमध्यान्तं समुद्धरेत्॥ ३७
ततो ब्रूयादिमं मन्त्रं सावित्रं सर्वसिद्धिदम्।
शृणु तच्च महादेवि भुक्तिमुक्तिप्रदं सदा॥ ३८
सिन्दूरवर्णाय सुमण्डलाय
नमोऽस्तु वज्राभरणाय तुभ्यम्।
पद्माभनेत्राय सपंकजाय
ब्रह्मेन्द्रनारायणकारणाय ॥ ३९
सरक्तचूर्णं ससुवर्णतोयं
स्रक्कुंकुमाढ्यं सकुशं सपुष्पम्।
प्रदत्तमादाय सहेमपात्रं
प्रशस्तमर्घ्यं भगवन्प्रसीद॥ ४०
एवमुक्त्वा ततो दत्त्वा तदर्घ्यं सूर्यमूर्तये।
नमस्कुर्यादिमं मन्त्रं पठित्वा सुसमाहितः॥ ४१
नमः शिवाय साम्बाय सगणायादिहेतवे।
रुद्राय विष्णवे तुभ्यं ब्रह्मणे च त्रिमूर्तये॥ ४२
एवमुक्त्वा नमस्कृत्य स्वासने समवस्थितः।
ऋष्यादिकं पुनः कृत्वा करं संशोध्य वारिणा॥ ४३
पुनश्च भस्म सन्धार्य पूर्वोक्तेनैव वर्त्मना।
न्यासजातं प्रकुर्वीत शिवभावविवृद्धये॥ ४४
पञ्चोपचारैः संपूज्य शिरसा श्रीगुरुं बुधः।
प्रणवं श्रीचतुर्थ्यन्तं नमोऽन्तं प्रणमेत्ततः॥ ४५
पञ्चात्मकं बिन्दुयुतं पञ्चमस्वरसंयुतम्।
तदेवं बिन्दुसहितं पञ्चमस्वरवर्जितम्॥ ४६
पञ्चमस्वरसंयुक्तं मन्त्रीशं च सबिन्दुकम्।
उद्धृत्य बिन्दुसहितं संवर्तकमथोद्धरेत्॥ ४७
एतैरेवं क्रमाद्बीजैरुद्धृतैः प्रणमेद् बुधः।
भुजयोरूरुयुग्मे च गुरुं गणपतिं तथा॥ ४८
दुर्गां च क्षेत्रपालं च बद्धाञ्जलिपुटः स्थितः।
ओमस्त्राय फडित्युक्त्वा करौ संशोध्य षट् क्रमात्॥ ४९

ताम्रनिर्मित, प्रस्थमात्र जल भरनेके योग्य विस्तारवाला आधारसहित कलश स्थापित करके गन्ध, पुष्पादिसे ताम्रकलशका पूजनकर दोनों घुटनोंके बल पृथ्वीपर बैठकर हाथमें अर्घ्यपात्रको लेकर उसे भौंहपर्यन्त ऊपर उठाये और तब सविता देवताके सर्वसिद्धिप्रद इस मन्त्रका पाठ करे। हे महादेवि! सर्वदा भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले इस मन्त्रको सुनो—॥ ३५—३८॥

सिन्दूरकी-सी आभावाले, उत्तम मण्डलसे युक्त, कमलके समान कान्तिमय नेत्रोंवाले, कमलपुष्पसे शोभित तथा ब्रह्मा, इन्द्र और नारायणके उद्भवहेतु, हीरकभूषित आपको नमस्कार है। हे भगवन्! रोली, सुवर्ण, पुष्पमाला, कुश, पुष्प तथा कुंकुमसे युक्त, स्वर्णपात्रमें स्थित यह जलसहित उत्तम अर्घ्य [आपको] अर्पित है, इसे ग्रहणकर [आप] प्रसन्न होइये॥ ३९-४०॥

इस प्रकार सूर्यरूपी महेश्वरको अर्घ्य प्रदानकर सावधानीसे 'पार्वतीजी एवं प्रमथगणोंसे समन्वित, संसारके आदि कारण, ब्रह्मा-विष्णु-रुद्ररूप तीन विग्रहोंवाले आप शिवजीको नमस्कार है।' यह मन्त्र पढ़कर नमस्कार करे॥ ४१-४२॥

इस प्रकार बोलते हुए नमस्कार करनेके उपरान्त अपने आसनपर स्थित हो ऋषि आदिका न्यास करके तथा जलसे हाथोंको शुद्ध करके पूर्वोक्त विधिसे पुनः भस्म धारणकर शिवमें भावनाकी दृढ़ताके लिये नानाविध न्यास करे॥ ४३-४४॥

बुद्धिमान् साधकको चाहिये कि पंचोपचारसे गुरुदेवकी पूजाकर '**श्रीगुरवे नमः**' मन्त्रका उच्चारण करके उन्हें सिरसे प्रणाम करे। पंचात्मक, बिन्दुयुक्त पंचम स्वर उकारसहित, वैसे ही बिन्दुसहित, पंचम स्वररहित तथा [पुनः] पंचमस्वरसहितका उद्धारकर बिन्दुसहित अकार तथा संवर्तक बीजका उच्चारण करे॥ ४५—४७॥

इस प्रकार क्रमशः बीजोंका उद्धारकर दोनों भुजा, तथा ऊरुको झुकाकर बुद्धिमान् पुरुष गुरु तथा गणपतिको प्रणाम करे। उसके अनन्तर हाथ जोड़कर दुर्गा तथा क्षेत्रपालको प्रणाम करे। '**ॐ अस्त्राय फट्**'—इस मन्त्रका छः बार उच्चारणकर हाथोंको शुद्ध करे॥ ४८-४९॥

अपसर्पन्त्विति प्रोच्य प्रणवं तदनन्तरम्।
अस्त्राय फडिति प्रोच्य पार्ष्णिघातत्रयेण तु॥ ५०

उद्धृत्य विघ्नान्भूमिष्ठान्करतालत्रयेण तु।
अन्तरिक्षगतान्दृष्ट्वा विलोक्य दिवि संस्थितान्॥ ५१

निरुद्धप्राण आसीनो हंसमन्त्रमनुस्मरन्।
हृदिस्थं जीवचैतन्यं ब्रह्मनाड्या समानयेत्॥ ५२

द्वादशान्तःस्थविशदे सहस्रारमहाम्बुजे।
चिच्चन्द्रमण्डलान्तःस्थं चिद्रूपं परमेश्वरम्॥ ५३

शोषदाहप्लवान्कुर्याद्रेचकादि क्रमेण तु।
सषोडशचतुष्षष्टिद्वात्रिंशद्गणनायुतैः ॥ ५४

वाय्वग्निसलिलार्णैस्तैः स्ववेदाद्यैरनुक्रमात् ।

प्राणानायम्य मूलस्थां कुण्डलीं ब्रह्मरन्ध्रगाम्॥ ५५

आनीय द्वादशांतःस्थसहस्राराम्बुजोदरे।
चिच्चन्द्रमण्डलोद्भूतपरमामृतधारया ॥ ५६

संसिक्तायां तनौ भूयः शुद्धदेहः सुभावनः।
सोऽहमित्यवतीर्याथ स्वात्मानं हृदयाम्बुजे॥ ५७

आत्मन्यावेश्य चात्मानममृतं सृतिधारया।
प्राणप्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यादत्र समाहितः॥ ५८

एकाग्रमानसो योगी विमृश्यात्तां च मातृकाम्।
पुटितां प्रणवेनाथ न्यसेद्वाह्ये च मातृकाम्॥ ५९

पुनश्च संयतप्राणः कुर्याद् दृष्ट्यादिकं बुधः।
शंकरं संस्मरंश्चित्ते संन्यसेच्च विमत्सरः॥ ६०

प्रणवस्य ऋषिर्ब्रह्मा देवि गायत्रमीरितम्।
छन्दोऽत्र देवताहं वै परमात्मा सदाशिवः॥ ६१

अकारो बीजमाख्यातमुकारः शक्तिरुच्यते।
मकारः कीलकं प्रोक्तं मोक्षार्थे विनियुज्यते॥ ६२

'अपसर्पन्तु ते भूताः'—इस मन्त्रको पढ़कर प्रणवपूर्वक **'अस्त्राय फट्'**—इस मन्त्रका उच्चारणकर बगलमें तीन बार ताली बजाकर भूतलमें स्थित समस्त विघ्नोंको आकाशमें भगा दे। उसके बाद विघ्नोंको अन्तरिक्षमें गया हुआ तथा वहाँ स्थित हुआ देखकर प्राणायाम करना चाहिये। फिर **'सोऽहम्'**—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए हृदयमें विराजमान जीवचैतन्यको सुषुम्ना नाड़ीद्वारा द्वादशान्तपर्यन्त विस्तारवाले सहस्र-दलकमलमें स्थित चैतन्यमय चन्द्रमण्डलमें विराजमान चिद्रूप परमेश्वरके साथ योजित कर दे॥ ५०—५३॥

वायु, अग्नि तथा जलके बीजमन्त्रोंसहित सोलह, चौंसठ एवं बत्तीस प्राणायामोंके द्वारा रेचक आदिके क्रमसे शोषण, दाह तथा प्लावन अपनी-अपनी वेदशाखामें निर्दिष्ट मन्त्रोंसे करे॥ ५४½॥

तदनन्तर प्राणायाम करके मूलाधारमें स्थित तथा ब्रह्मरन्ध्रकी ओर उन्मुख कुण्डलिनीको लाकर द्वादशान्तमें स्थित सहस्रारपद्मके मध्यमें विद्यमान चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे निकली हुई उत्कृष्ट अमृतधारासे आप्लुत हुए पवित्र देहवाला [साधक] भलीभाँति **'सोऽहम्'**—इस प्रकारकी भावना करते हुए अपने आत्मतत्त्वको हृदयकमलमें उद्बुद्ध करे॥ ५५—५७॥

उसके अनन्तर [उस चैतन्यमय चन्द्रमण्डलसे] झरती हुई अमृतधारासे आप्लुत आत्मतत्त्वको परमात्मामें आविष्टकर एकाग्रचित्तसे विधिपूर्वक प्राणप्रतिष्ठा करे। इस प्रकार योगी एकाग्र मन हो मातृकाशक्तिका स्मरण करे और प्रणवसे सम्पुटित मातृकाओंको बाहर तथा भीतर न्यस्त करे। तत्पश्चात् प्राणवायुको रोककर बुद्धिमान् पुरुष ध्यान आदि करे और चित्तमें शंकरका स्मरण करते हुए मत्सरताका त्याग करके न्यास करे॥ ५८—६०॥

हे देवि! प्रणवके ऋषि ब्रह्मा तथा गायत्री छन्द कहा गया है। मैं परमात्मा सदाशिव उसका देवता हूँ। अकार उसका बीज कहा गया है, उकार शक्ति कहा गया है और मकार कीलक है तथा मोक्षकी कामनाके लिये इसका विनियोग किया जाता है॥ ६१-६२॥

अङ्गुष्ठद्वयमारभ्य तलान्तं परिमार्जयेत्।
ओमित्युक्त्वाथ देवेशि करन्यासं समारभेत्॥ ६३
दक्षहस्तस्थिताङ्गुष्ठं समारभ्य यथाक्रमम्।
वामहस्तकनिष्ठांतं विन्यसेत्पूर्ववत्क्रमात्॥ ६४
अकारमप्युकारं च मकारं बिन्दुसंयुतम्।
नमोऽन्तं प्रोच्य सर्वत्र हृदयादौ न्यसेदथ॥ ६५
अकारं पूर्वमुद्धृत्य ब्रह्मात्मानमथाचरेत्।
ङेऽन्तं नमोऽन्तं हृदये विनियुज्यात्तथा पुनः॥ ६६
उकारं विष्णुसहितं शिरोदेशे प्रविन्यसेत्।
मकारं रुद्रसहितं शिखायां तु प्रविन्यसेत्॥ ६७
एवमुक्त्वा मुनिर्मन्त्री कवचं नेत्रमस्तके।
विन्यसेद्देवदेवेशि सावधानेन चेतसा॥ ६८
अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्माणि विन्यसेत्।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेष्वेतानि विन्यसेत्॥ ६९
ईशानस्य कलाः पञ्च पञ्चस्वेतेषु च क्रमात्।
ततश्चतुर्षु वक्त्रेषु पुरुषस्य कला अपि॥ ७०
चतस्त्रः प्रणिधातव्याः पूर्वादिक्रमयोगतः।
हृत्कंठांसेषु नाभौ च कुक्षौ पृष्ठे च वक्षसि॥ ७१
अघोरस्य कलाश्चाष्टौ पूजनीया यथाक्रमम्।
पश्चात् त्रयोदशकलाः पायुमेढ्रोरुजानुषु॥ ७२
जंघास्फिक्कटिपार्श्वेषु वामदेवस्य भावयेत्।
सद्यस्यापि कलाश्चाष्टौ नेत्रेषु च यथाक्रमम्॥ ७३
कीर्तितास्ताः कलाश्चैवं पादयोरपि हस्तयोः।
प्राणे शिरसि बाह्वोश्च कल्पयेत्कल्पवित्तमः॥ ७४
अष्टत्रिंशत्कलान्यासमेवं कृत्वा तु सर्वशः।
पश्चात्प्रणवविद्धीमान्प्रणवन्यासमाचरेत्॥ ७५
बाहुद्वये कूर्परयोस्तथा च मणिबन्धयोः।
पार्श्वतोदरजङ्घेषु पादयोः पृष्ठतस्तथा॥ ७६
इत्थं प्रणवविन्यासं कृत्वा न्यासविचक्षणः।
हंसन्यासं प्रकुर्वीत परमात्मविबोधिनि॥ ७७

हे देवेशि! दोनों अँगूठोंसे लेकर दोनों हाथोंके तल-भागको शुद्धकर ॐका उच्चारण करके करन्यास करे। दाहिने हाथके अँगूठेसे प्रारम्भकर बायें हाथकी कनिष्ठा अँगुलीपर्यन्त पूर्ववत् क्रमसे न्यास करे॥ ६३-६४॥

अकार, उकार और बिन्दुसहित मकार—इनके अन्तमें 'नमः' लगाकर हृदयादिका स्पर्शकर न्यास करे॥ ६५॥

सर्वप्रथम अकारका उद्धारकर चतुर्थी एकवचनान्त ब्रह्मात्म शब्दके अन्तमें नमः लगाकर '**ब्रह्मात्मने नमः**'—इस प्रकार कह करके हृदयका स्पर्श करे। उकारपूर्वक 'विष्णु' शब्दका शिरःप्रदेशमें न्यास करे। मकारपूर्वक 'रुद्र' शब्दका शिखामें न्यास करे॥ ६६-६७॥

हे देवदेवेशि! इस प्रकार कहकर मन्त्रको जाननेवाला मुनि सावधानीसे कवच, नेत्र तथा मस्तकका भी न्यास करे। इसी प्रकार अंग, वक्त्र तथा कलाभेदसे पंचब्रह्मको सिर, मुख, हृदय, गुह्य तथा चरणोंमें भी न्यस्त करना चाहिये॥ ६८-६९॥

ईशानकी पाँच कलाओंका क्रमशः इन्हीं पाँचों स्थानोंमें क्रमसे न्यास करे। पुनः पूर्वादि क्रमसे स्थित शिवके चार मुखोंमें तत्पुरुषकी चार कलाओंका भी पूर्वादि दिशाओंमें न्यास करे। इसी प्रकार अघोरकी आठ कलाओंको भी हृदय, कण्ठ, दोनों कन्धों, नाभि, कुक्षि, पृष्ठ तथा वक्षःस्थलपर न्यस्त करे। उसके अनन्तर वामदेवकी तेरह कलाओंका भी पायु, मेढ्र, ऊरु, जानु, जंघा, स्फिक्, कटि और पार्श्वमें न्यास करे। इसी तरह विद्वान् सद्योजातकी आठ कलाओंका यथाक्रमसे नेत्र, पाद, हस्त, प्राण तथा सिरमें न्यास करे॥ ७०—७४॥

इस तरह [ईशानकी पाँच, तत्पुरुषकी चार, अघोरकी आठ, वामदेवकी तेरह और सद्योजातकी आठ] अड़तीस कलाओंका न्यास करके प्रणववेत्ता बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह प्रणवन्यास आरम्भ करे, हे परमात्मविबोधिनि! दोनों बाहुओं, केहुनी, मणिबन्ध, पार्श्व, उदर, जंघा, दोनों पाद और पीठमें प्रणवन्यास करके न्यासज्ञाता हंसन्यास करे॥ ७५—७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां संन्यासपद्धतौ न्यासवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें संन्यासपद्धतिमें न्यासवर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ॥ ६॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

शिवजीके विविध ध्यानों तथा पूजा-विधिका वर्णन

ईश्वर उवाच

स्ववामे चतुरस्त्रं तु मण्डलं परिकल्पयेत्।
ओमित्यभ्यर्च्य तस्मिंस्तु शंखमस्त्रोपशोधितम्॥ १

स्थाप्य साधारकं तं तु प्रणवेनार्चयेत्ततः।
आपूर्य शुद्धतोयेन चन्दनादिसुगन्धिना॥ २

अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेन च सप्तधा।
अभिमन्त्र्य ततस्तस्मिन्धेनुमुद्रां प्रदर्शयेत्॥ ३

शंखमुद्रां च पुरतश्चतुरस्त्रं प्रकल्पयेत्।
तदन्तरेऽर्धचन्द्रं च त्रिकोणं च तदन्तरे॥ ४
षट्कोणं वृत्तमेवेदं मण्डलं परिकल्पयेत्।
अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः प्रणवेनाथ मध्यतः॥ ५
साधारमर्घ्यपात्रं च स्थाप्य गंधादिनार्चयेत्।
आपूर्य शुद्धतोयेन तस्मिन्पात्रे विनिःक्षिपेत्॥ ६
कुशाग्राण्यक्षतांश्चैव यवव्रीहितिलानपि।
आज्यसिद्धार्थपुष्पाणि भसितं च वरानने॥ ७
सद्योजातादिभिर्मन्त्रैः षडङ्गैः प्रणवेन च।
अभ्यर्च्य गंधपुष्पाद्यैरभिमन्त्र्य च वर्मणा॥ ८

अवगुण्ठ्यास्त्रमन्त्रेण संरक्षार्थं प्रदर्शयेत्।
धेनुमुद्रां च तेनैव प्रोक्षयेदस्त्रमन्त्रतः॥ ९

स्वात्मानं गंधपुष्पादिपूजोपकरणान्यपि।
पद्मस्येशानदिक्पद्मं प्रणवोच्चारपूर्वकम्॥ १०

गुर्वासनाय नम इत्यासनं परिकल्पयेत्।
गुरोर्मूर्तिं च तत्रैव कल्पयेदुपदेशतः॥ ११

प्रणवं गुं गुरुभ्योऽन्ते नमः प्रोच्यापि देशिकम्।
समावाह्य ततो ध्यायेद्दक्षिणाभिमुखं स्थितम्॥ १२

सुप्रसन्नमुखं सौम्यं शुद्धस्फटिकनिर्मलम्।
वरदाभयहस्तं च द्विनेत्रं शिवविग्रहम्॥ १३

ईश्वर बोले—साधकको अपनी बायीं ओर चौकोर मण्डलका निर्माण करना चाहिये। उस मण्डलकी प्रणवके द्वारा पूजाकर अस्त्रमन्त्रसे शोधितकर आधारसहित शंख स्थापित करे। इस प्रकार मण्डलमें स्थित शंखका प्रणवसे पूजन करे। सबसे पहले चन्दनादिके द्वारा सुवासित जलसे शंखको पूर्ण करके सात बार प्रणवद्वारा अभिमन्त्रितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उसका पूजन करे और धेनुमुद्रा तथा शंखमुद्राका प्रदर्शन करे॥ १—३॥

उसके आगे चतुष्कोणका निर्माण करे। उसके बीचमें अर्धचन्द्र तथा उसके मध्यभागमें त्रिकोण बनाये, फिर उस त्रिकोणमें षट्कोणात्मक वृत्त बनाये। इस प्रकार मण्डलकी परिकल्पना करे। मण्डलका गन्ध, पुष्पादिद्वारा प्रणवसे पूजन करके वहाँपर आधारयुक्त अर्घ्यपात्र स्थापितकर उसे जलसे परिपूर्णकर गन्धादिसे अर्चित करे और उसमें कुशाका अग्रभाग, अक्षत, जौ, व्रीहि, तिल, घृत, पीली सरसों, पुष्प और भस्मका निक्षेपकर सद्योजातादि षडंग मन्त्रों और प्रणवमन्त्रसे पूजा करे। उस अर्घ्यपात्रकी गन्ध, पुष्पादिसे पूजाकर कवचसे अभिमन्त्रित करना चाहिये॥ ४—८॥

अस्त्रमन्त्रसे उसका अवगुण्ठन करके रक्षाहेतु धेनुमुद्रा प्रदर्शित करना चाहिये, फिर अस्त्रमन्त्रद्वारा उसका, अपना तथा गन्धादि पूजनसामग्रीका प्रोक्षण करे। उसके अनन्तर कमलकी ईशान दिशामें स्थित कमलपर ओंकारका उच्चारण करके '**गुर्वासनाय नमः**'—इस प्रकार कहकर आसन प्रदान करनेकी भावना करे और गुरुके उपदेशानुसार वहाँ गुरुमूर्तिकी परिकल्पना करे॥ ९—११॥

'**ॐ गुं गुरुभ्यो नमः**'—इस मन्त्रका उच्चारणकर गुरुका आवाहन करे तथा दक्षिणाभिमुख स्थित हुए उनका ध्यान करे। जो प्रसन्नमुख हैं, सौम्य एवं शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हैं तथा हाथमें वर एवं अभयमुद्राको धारण किये हुए हैं, जिनके दो नेत्र हैं और जो साक्षात् शिवस्वरूप हैं। इस प्रकार गुरुका

एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पादिभिरनुक्रमात्।
पद्मस्य नैर्ऋते पद्मे गणपत्यासनोपरि॥ १४

मूर्तिं प्रकल्प्य तत्रैव गणानां त्वेति मन्त्रतः।
समावाह्य ततो देवं ध्यायेदेकाग्रमानसः॥ १५

रक्तवर्णं महाकायं सर्वाभरणभूषितम्।
पाशाङ्कुशाक्षाभीष्टं च दधानं करपङ्कजैः॥ १६

गजाननं प्रभुं सर्वविघ्नौघघ्नमुपासितुः।
एवं ध्यात्वा यजेद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः॥ १७

कदलीनारिकेलाम्रफललड्डुकपूर्वकम्।
नैवेद्यं च समर्प्याथ नमस्कुर्याद्गजाननम्॥ १८

पद्मस्य वायुदिक्पद्मे संकल्प्य स्कान्दमासनम्।
स्कन्दमूर्तिं प्रकल्प्याथ स्कन्दमावाहयेद् बुधः॥ १९

उच्चार्य स्कन्दगायत्रीं ध्यायेदथ कुमारकम्।
उद्यदादित्यसंकाशं मयूरवरवाहनम्॥ २०

चतुर्भुजमुदाराङ्गं मुकुटादिविभूषितम्।
वरदाभयहस्तं च शक्तिकुक्कुटधारिणम्॥ २१

एवं ध्यात्वाथ गंधाद्यैरुपचारैरनुक्रमात्।
सम्पूज्य पूर्वद्वारस्य दक्षशाखामुपाश्रितम्॥ २२

अन्तःपुराधिपं साक्षान्नन्दिनं सम्यगर्चयेत्।
चामीकराचलप्रख्यं सर्वाभरणभूषितम्॥ २३

बालेन्दुमुकुटं सौम्यं त्रिनेत्रं च चतुर्भुजम्।
दीप्तशूलमृगीटंकं हेमवेत्रधरं विभुम्॥ २४

चन्द्रबिम्बाभवदनं हरिवक्त्रमथापि वा।
उत्तरस्यां तथा तस्य भार्यां च मरुतां सुताम्॥ २५

सुयशां सुव्रतामम्बपादमण्डनतत्पराम्।
संपूज्य विधिवद्गन्धपुष्पाद्यैरुपचारकैः॥ २६

ध्यानकर क्रमशः गन्ध-पुष्पादिसे उनका पूजन करे, फिर उस पद्मके नैर्ऋत्यकोणमें स्थित पद्मपर गणेशके आसनके ऊपर गणपतिमूर्तिकी परिकल्पना करे और **'गणानां त्वा०'**—इस मन्त्रसे गणपतिका आवाहन करे, तदुपरान्त एकाग्रचित्त होकर इस प्रकार उनका ध्यान करे—वे रक्तवर्णवाले, विशालकाय, सम्पूर्ण आभूषणोंसे अलंकृत, चारों हाथोंमें क्रमशः पाश-अंकुश, अक्षमाला तथा वर-मुद्रा धारण किये हुए हैं, वे गजानन प्रभु ध्यान करनेवाले उपासकोंके सम्पूर्ण विघ्नोंको नष्ट करनेवाले हैं। इस प्रकार गणपतिका ध्यानकर गन्ध-पुष्पादि उपचारोंसे उनका पूजन करे॥ १२—१७॥

केला, नारिकेल, आम्रफल, लड्डू तथा फलसहित नैवेद्य समर्पितकर नमस्कार करे। पद्मके वायव्यकोणवाले कमलपर संकल्पपूर्वक स्कन्दके लिये आसन प्रदान करे और स्कन्दकी मूर्ति बनाकर बुद्धिमान् साधक उसीमें उनका आवाहन करे॥ १८-१९॥

स्कन्दगायत्रीका उच्चारण करनेके अनन्तर कुमारका इस प्रकार ध्यान करे—जो उदीयमान सूर्यके समान तेजस्वी तथा श्रेष्ठ मयूरके आसनपर स्थित हैं। जो चार भुजाओंसे युक्त, परम कृपालु, मुकुट आदि आभूषणोंसे सुशोभित और अपने चारों हाथोंमें वर-अभय मुद्रा, शक्ति तथा कुक्कुट धारण किये हुए हैं॥ २०-२१॥

इस प्रकार ध्यान करके गन्ध, पुष्पादि पूजोपचार सामग्रीसे विधिपूर्वक उनकी पूजा करे। इसके बाद पूर्वद्वारके दाहिनी ओर रहनेवाले अन्तःपुरके रक्षक साक्षात् नन्दीश्वरकी भलीभाँति पूजा करे। जो सोनेके पर्वतके समान, सम्पूर्ण आभरणोंसे विभूषित, बालचन्द्रयुक्त मुकुट धारण किये हुए, सौम्यमूर्ति, त्रिनेत्र, चतुर्भुज, अपनी भुजाओंमें देदीप्यमान शूल, मृगमुद्रा, टंक तथा सुवर्णका वेत्र धारण किये हुए हैं; चन्द्रबिम्बकी-सी प्रभासे युक्त तथा वानरके मुखसदृश जिनका मुख है—ऐसे नन्दीकी तथा उनके उत्तरकी ओर मरुतोंकी कन्या सुयशा, जो नन्दीश्वरकी भार्या हैं, जो अत्यन्त पतिव्रता तथा पार्वतीजीके चरणोंको [आलता आदिसे] अलंकृत करनेमें तत्पर रहती हैं, उनका भी गन्ध, पुष्पादि उपहारोंसे पूजन करे॥ २२—२६॥

ततः संप्रोक्षयेत्पद्मं सास्त्रशंखोदबिन्दुभिः।
कल्पयेदासनं पश्चादाधारादि यथाक्रमम्॥ २७

आधारशक्तिं कल्याणीं श्यामां ध्यायेदधो भुवि।
तस्याः पुरस्तादुत्कंठमनन्तं कुंडलाकृतिम्॥ २८

धवलं पञ्चफणिनं लेलिहानमिवाम्बरम्।
तस्योपर्यासनं भद्रं कंठीरवचतुष्पदम्॥ २९

धर्मो ज्ञानं च वैराग्यमैश्वर्यं च पदानि वै।
आग्नेयादिश्वेतपीतरक्तश्यामानि वर्णतः॥ ३०

अधर्मादीनि पूर्वादीन्युत्तरान्तान्यनुक्रमात्।
राजावर्तमणिप्रख्यान्यस्य गात्राणि भावयेत्॥ ३१

अधोर्ध्वच्छदनं पश्चात्कन्दं नालं च कण्ठकान्।
दलादिकं कर्णिकां च विभाव्य क्रमशोऽर्चयेत्॥ ३२

दलेषु सिद्धयश्चाष्टौ केसरेषु च शक्तिकाः।
रुद्रा वामादयस्त्वष्टौ पूर्वादिपरितः क्रमात्॥ ३३

कर्णिकायां च वैराग्यं बीजेषु नव शक्तयः।
वामाद्या एव पूर्वादि तदन्ते च मनोन्मनी॥ ३४

कन्दे शिवात्मको धर्मो नाले ज्ञानं शिवाश्रयम्।
कर्णिकोपरि वाह्नेयं मण्डलं सौरमैन्दवम्॥ ३५

आत्मविद्या शिवाख्यं च तत्त्वत्रयमतः परम्।
सर्वासनोपरि सुखं विचित्रकुसुमोज्ज्वलम्॥ ३६

परव्योमावकाशाख्यविद्ययातीव भास्वरम्।
परिकल्प्यासनं मूर्त्तेः पुष्पविन्यासपूर्वकम्॥ ३७

आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि।
ॐकारादिचतुर्थ्यन्तं नाममन्त्रं नमोऽन्तकम्॥ ३८

उच्चार्य पूजयेद्विद्वान्सर्वत्रैवं विधिक्रमः।

तत्पश्चात् अस्त्रमन्त्र पढ़कर शंखोदकसे उस पद्मका प्रोक्षण करे। यथाक्रम आधारादि आसनका भी निर्माण करे। पृथ्वीके नीचे श्यामवर्णकी कल्याणकारिणी आधारशक्तिका ध्यान करे। उसके आगे ऊपरकी ओर मुख किये कुण्डलके आकारवाले उन अनन्त भगवान्का ध्यान करे—॥ २७-२८॥

जिनका शरीर धवल वर्णका है, जो पाँच फणवाले हैं और जो मानो आकाशको चाट-से रहे हैं। तत्पश्चात् उस आधारशक्तिके ऊपर चार पादवाला एक श्रेष्ठ सिंहासन स्थापित करे। उस सिंहासनके चारों पादोंके नाम आग्नेय आदि कोणोंके क्रमसे धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा ऐश्वर्य हैं। उनका वर्ण श्वेत, पीत, रक्त तथा श्याम है॥ २९-३०॥

उसके अनन्तर पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे उत्तर-दिशापर्यन्त अधर्म आदिका आवाहन करे और लाजावर्त-मणिके समान कान्तिमय उन अनन्तदेवके शरीरकी भावना करे। उसके अनन्तर कमलके अधश्छद, ऊर्ध्वछद, कन्द, नाल, कण्टक, दल और कर्णिकामें इस प्रकार भावनाकर क्रमशः उनका अर्चन करे॥ ३१-३२॥

दलोंमें आठों सिद्धियों तथा केसरोंमें रुद्रा, वामा आदि आठों शक्तियोंकी पूर्व आदिके क्रमसे चतुर्दिक् भावना करे। कर्णिकामें वैराग्य और बीजोंमें नौ शक्तियोंकी भावना करे। इसी प्रकार वामादि शक्तियोंकी पूर्वादि दिशाओंमें कल्पनाकर बादमें मनोन्मनीकी कल्पना करे॥ ३३-३४॥

कन्दमें शिवात्मक धर्म, नालमें शिवाश्रयभूत ज्ञान, कर्णिकाके ऊपर आग्नेयमण्डल, चन्द्रमण्डल तथा सूर्यमण्डलका ध्यान करे॥ ३५॥

आत्मा, विद्या तथा शिव—इन तीन तत्त्वोंकी कल्पना करनेके अनन्तर सभी आसनोंके ऊपर सुखकर, चित्र-विचित्र पुष्पोंसे उद्भासित तथा परव्योमावकाश नामवाली विद्याके द्वारा अत्यन्त प्रकाशमान आसनकी मूर्तिके उद्देश्यसे पुष्प अर्पित करते हुए परिकल्पना करे॥ ३६-३७॥

तत्पश्चात् आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्धविद्या आसन (विशुद्ध ज्ञानासन)-पर्यन्त ओंकारसहित चतुर्थी विभक्तिके अन्तमें '**नमः**' लगाकर नाममन्त्रोंका उच्चारण करके विद्वान् साधक पूजन करे, यही विधिक्रम सर्वत्र

अङ्गवक्त्रकलाभेदात्पञ्च ब्रह्माणि पूर्ववत्॥ ३९
विन्यसेत्क्रमशो मूर्त्तौ तत्तन्मुद्राविचक्षणः।
आवाहयेत्ततो देवं पुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः॥ ४०

है। मुद्रावित् पुरुष अंग, मुख तथा कलाके भेदसे उन सद्योजातादि पाँचों ब्रह्मदेवताओंको पूर्ववत् उनकी मूर्तिमें क्रमशः विन्यस्त करे, फिर पुष्पांजलि हाथमें लेकर देवताका आवाहन करे॥ ३८—४०॥

सद्योजातं प्रपद्यामीत्यारभ्योमन्तमुच्चरन् ।
आधारोत्थितनादं तु द्वादशग्रन्थिभेदतः॥ ४१
ब्रह्मरन्ध्रान्तमुच्चार्य ध्यायेदोङ्कारगोचरम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं देवं निष्कलमक्षरम्॥ ४२
कारणं सर्वलोकानां सर्वलोकमयं परम्।
अन्तर्बहिः स्थितं व्याप्य ह्यणोरल्पं महत्तमम् ॥ ४३
भक्तानामप्रयत्नेन दृश्यमीश्वरमव्ययम्।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुरुद्राद्यैरपि देवैरगोचरम्॥ ४४
वेदसारं च विद्वद्भिरगोचरमिति श्रुतम्।
आदिमध्यान्तरहितं भेषजं भवरोगिणाम्॥ ४५
समाहितेन मनसा ध्यात्वैवं परमेश्वरम्।
आवाहनं स्थापनं च सन्निरोधं निरीक्षणम्॥ ४६
नमस्कारं च कुर्वीत बद्ध्वा मुद्राः पृथक्पृथक्।

'**सद्योजातं प्रपद्यामि**' से लेकर '**शिवो मे अस्तु सदाशिवोम्**' यहाँतक मन्त्रका उच्चारण करते हुए मूलाधारसे उठे हुए नादका बारह चक्रोंकी ग्रन्थियोंको भेदकर ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्त उच्चारणकर ओंकारसे प्रत्यक्ष होनेवाले शिवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे सदाशिव शुद्ध स्फटिकके समान वर्णवाले, निष्कल, अक्षर, सभी लोकोंके कारण, सर्वलोकमय, परम तत्त्व, बाहर तथा भीतर सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित, अणुसे अणु तथा महान्‌से महान्, भक्तोंको बिना प्रयत्न दिखायी पड़नेवाले, ईश्वर, अव्यय, ब्रह्मा-इन्द्र-विष्णु-रुद्र आदि देवगणोंको भी दिखायी न देनेवाले, वेदोंके सारस्वरूप, विद्वानोंके द्वारा अगोचर सुने जानेवाले, आदि-मध्य-अन्तरहित और भवरोगियोंके लिये औषधस्वरूप हैं। इस प्रकार एकाग्रचित्त हो परमेश्वरका ध्यान करके पृथक्-पृथक् मुद्राओंका प्रदर्शन करते हुए उनका आवाहन, स्थापन, सन्निरोध, निरीक्षण तथा नमस्कार करे।॥ ४१—४६½॥

ध्यायेत्सदाशिवं साक्षाद्देवं सकलनिष्कलम्॥ ४७
शुद्धस्फटिकसंकाशं प्रसन्नं शीतलद्युतिम्।
विद्युद्वलयसंकाशं जटामुकुटभूषितम्॥ ४८
शार्दूलचर्मवसनं किञ्चित्स्मितमुखाम्बुजम्।
रक्तपद्मदलप्रख्यपाणिपादतलाधरम् ॥ ४९
सर्वलक्षणसम्पन्नं सर्वाभरणभूषितम्।
दिव्यायुधकरैर्युक्तं दिव्यगन्धानुलेपनम्॥ ५०
पञ्चवक्त्रं दशभुजं चन्द्रखण्डशिखामणिम् ।

सकल तथा निष्कल दोनों ही स्वरूपोंवाले साक्षात् सदाशिव देवका इस प्रकार ध्यान करे कि वे शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ, [सर्वदा] प्रसन्न, शीतल कान्तिसे युक्त, विद्युत्के वलयके सदृश, जटारूपी मुकुटसे सुशोभित, व्याघ्र-चर्मका वस्त्र धारण किये हुए, मन्द हास्यसे युक्त मुखकमलवाले, रक्तकमलकी पंखुड़ीके समान प्रतीत होते हुए करतल-पदतल तथा अधरवाले, सम्पूर्ण लक्षणोंसे सम्पन्न, सभी आभरणोंसे विभूषित, हाथोंमें दिव्य आयुध धारण किये हुए, दिव्य गन्धका लेप लगाये हुए, पाँच मुख तथा दस भुजाओंवाले और सिरपर अर्धचन्द्ररूप मणिको धारण किये हुए हैं॥ ४७—५०½॥

अस्य पूर्वमुखं सौम्यं बालार्कसदृशप्रभम्॥ ५१
त्रिलोचनारविन्दाढ्यं बालेन्दुकृतशेखरम्।
दक्षिणं नीलजीमूतसमानरुचिरप्रभम्॥ ५२

इनका पूर्व दिशाका मुख सौम्य, बालसूर्यके समान कान्तिमान्, कमलके समान तीन नेत्रोंसे युक्त तथा बालचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाला है, इनका दक्षिण-मुख नील मेघके समान सुन्दर कान्तिवाला,

भ्रुकुटीकुटिलं घोरं रक्तवृत्तत्रिलोचनम्।
दंष्ट्राकरालं दुष्प्रेक्ष्यं स्फुरिताधरपल्लवम्॥ ५३

उत्तरं विद्रुमप्रख्यं नीलालकविभूषितम्।
सद्विलासं त्रिनयनं चन्द्रार्धकृतशेखरम्॥ ५४

पश्चिमं पूर्णचन्द्राभं लोचनत्रितयोज्ज्वलम्।
चन्द्रलेखाधरं सौम्यं मन्दस्मितमनोहरम्॥ ५५

पञ्चमं स्फटिकप्रख्यमिन्दुरेखासमुज्ज्वलम्।
अतीव सौम्यमुत्फुल्ललोचनत्रितयोज्ज्वलम्॥ ५६

दक्षिणे शूलपरशुवज्रखड्गानलोज्ज्वलम्॥ ५७

वामे पिनाकनाराचघण्टापाशाङ्कुशोज्ज्वलम्।
निवृत्त्या जानुपर्यन्तमानाभि च प्रतिष्ठया॥ ५८

आकण्ठं विद्यया तद्वदाललाटं तु शान्तया।
तदूर्ध्वं शान्त्यतीताख्यकलया परया तथा॥ ५९

टेढ़ी भ्रुकुटीयुक्त, भयानक, लाल तथा गोल तीन नेत्रोंसे युक्त, दाढ़ोंके कारण विकराल प्रतीत होनेवाला, कठिनाईसे देखा जानेयोग्य तथा फड़कते ओठोंसे युक्त है, इनका उत्तरमुख मूँगे समान रक्ताभ, नीलवर्णकी अलकावलीसे सुशोभित, सुन्दर विलासयुक्त, तीन नेत्रोंसे युक्त तथा अर्धचन्द्रसे शोभित मस्तकसे समन्वित है। इनका पश्चिममुख पूर्णचन्द्रके समान मनोहर, तीन नेत्रोंसे उज्ज्वल, चन्द्ररेखाको धारण करनेवाला, सौम्य एवं मन्द हास्यके कारण मनोहर है, इनका पाँचवाँ मुख स्फटिकके समान स्वच्छ, चन्द्ररेखाके द्वारा उद्भासित, अत्यन्त सौम्य तथा खिले हुए तीन नेत्रोंसे भासमान है, इनके दक्षिणका भाग शूल, परशु, वज्र, खड्ग एवं अग्निसे उद्भासित है और वामभाग पिनाक नामक धनुष, बाण, घण्टा, पाश एवं अंकुशसे देदीप्यमान है, वे जानुपर्यन्त निवृत्ति नामक कलासे, नाभिपर्यन्त प्रतिष्ठा नामक कलासे, कण्ठपर्यन्त विद्या नामक कलासे, ललाटपर्यन्त शान्ता नामक कलासे तथा उसके ऊपर शान्त्यतीता नामक परा कलासे युक्त हैं॥ ५१—५९॥

पञ्चाध्वव्यापिनं तस्मात्कलापञ्चकविग्रहम्।
ईशानमुकुटं देवं पुरुषास्यं पुरातनम्॥ ६०
अघोरहृदयं तद्वद्वामगुह्यं महेश्वरम्।
सद्यपादं च तन्मूर्तिमष्टत्रिंशत्कलामयम्॥ ६१
मातृकामयमीशानं पञ्चब्रह्ममयं तथा।
ॐकाराख्यमयं चैव हंसन्यासमयं तथा॥ ६२
पञ्चाक्षरमयं देवं षडक्षरमयं तथा।
अङ्गषट्कमयं चैव जातिषट्कसमन्वितम्॥ ६३

भगवान् शिवका अड़तीस कलाओंसे समन्वित स्वरूप पंचाध्वव्यापी तथा वैसे ही पंचकलामय विग्रहवाला है। इन पुरातन महेश्वरदेवके मन्त्रात्मक श्रीविग्रहका ईशानमन्त्र शिरोमुकुट, तत्पुरुषमन्त्र मुख, अघोरमन्त्र हृदय, वैसे ही गुह्यदेश वामदेवमन्त्र तथा चरण सद्योजात मन्त्र है। वे मातृकामय, पंच ब्रह्ममय, ओंकारमय तथा हंसन्यासमय हैं; वे पंचाक्षरमय, षडक्षरमय, छः अंगोंसे युक्त तथा छः जातियोंसे युक्त हैं॥ ६०—६३॥

एवं ध्यात्वाथ मद्वामभागे त्वां च मनोन्मनीम्।
गौरीमिमाय मन्त्रेण प्रणवाद्येन भक्तितः॥ ६४

आवाह्य पूर्ववत्कुर्यान्नमस्कारान्तमीश्वरि।
ध्यायेत्ततस्त्वां देवेशि समाहितमना मुनिः॥ ६५

प्रफुल्लोत्पलपत्राभां विस्तीर्णायतलोचनाम्।
पूर्णचन्द्राभवदनां नीलकुञ्चितमूर्धजाम्॥ ६६

हे प्रिये! इस प्रकार मेरा ध्यानकर मेरे वामभागमें मनोन्मनीस्वरूपा आप गौरीका **'गौरीमिमाय'** इस मन्त्रके आदिमें ओंकार लगाकर भक्तिपूर्वक आवाहन करके पूर्ववत् नमस्कारपर्यन्त पूजन करे। हे ईश्वरि! हे देवेशि! तब एकाग्रमन हो साधक इस प्रकार तुम्हारा ध्यान करे—खिले हुए कमलके समान कान्तियुक्त एवं विस्तीर्ण तथा दीर्घ जिनके नेत्र हैं, पूर्ण चन्द्रके समान मुख तथा केश नीले एवं घुँघराले हैं, जिनके शरीरका वर्ण नील कमलके समान है, जिनके

नीलोत्पलदलप्रख्यां चन्द्रार्धकृतशेखराम् ।
अतिवृत्तघनोत्तुङ्गस्निग्धपीनपयोधराम् ॥ ६७
तनुमध्यां पृथुश्रोणीं पीतसूक्ष्मतराम्बराम्।
सर्वाभरणसम्पन्नां ललाटतिलकोज्ज्वलाम्॥ ६८
विचित्रपुष्पसंकीर्णकेशपाशोपशोभिताम् ।
सर्वतोऽनुगुणाकारां किञ्चिल्लज्जानताननाम्॥ ६९
हेमारविन्दं विलसद्दधानां दक्षिणे करे।
चण्डवच्चामरं हस्ते न्यस्यासीनां सुखासने॥ ७०

मस्तकपर अर्धचन्द्र विराज रहा है, जिनका वक्षःस्थल अत्यन्त उत्तुंग, घन, स्निग्ध तथा वृत्ताकार है, जिनकी कटि अत्यन्त सूक्ष्म तथा श्रोणिप्रदेश स्थूल है, जो पीत और सूक्ष्म वस्त्र धारण की हुई हैं, जो सर्वाभरणभूषित हैं तथा मस्तकपर उज्ज्वल तिलकसे युक्त हैं, जिनके केशपाश सुन्दर पुष्पसे ग्रथित हैं, जो सभी गुणोंसे सम्पन्न हैं, कुछ-कुछ लज्जासे जिनका मुख नीचेकी ओर झुका हुआ है, जो अपने दाहिने हाथमें सुवर्ण कमल धारण की हुई हैं और जो हाथमें चामरदण्ड लेकर सुखासनपर विराजमान हैं॥ ६४—७०॥

एवं मां त्वां च देवेशि ध्यात्वा नियतमानसः।
स्नापयेच्छंखतोयेन प्रणवप्रोक्षणक्रमात्॥ ७१
भवे भवे नातिभव इति पाद्यं प्रकल्पयेत्।
वामाय नम इत्युक्त्वा दद्यादाचमनीयकम्॥ ७२
ज्येष्ठाय नम इत्युक्त्वा शुभ्रवस्त्रं प्रकल्पयेत्।
श्रेष्ठाय नम इत्युक्त्वा दद्याद्यज्ञोपवीतकम्॥ ७३

हे देवेशि! इस प्रकार स्थिरचित्त होकर मेरा तथा तुम्हारा ध्यान करके ओंकारसे प्रोक्षणादिपूर्वक शंखके जलसे स्नान कराये। '**भवे भवे नातिभवे**' इस मन्त्रसे पाद्य अर्पित करे, '**वामदेवाय नमः**'—इस मन्त्रको पढ़कर आचमन प्रदान करे, '**ज्येष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर शुभ वस्त्र प्रदान करे तथा '**श्रेष्ठाय नमः**'—ऐसा कहकर यज्ञोपवीत प्रदान करे॥ ७१—७३॥

रुद्राय नम इत्युक्त्वा पुनराचमनीयकम्।
कालाय नम इत्युक्त्वा गन्धं दद्यात्सुसंस्कृतम्॥ ७४
कलविकरणाय नमोऽक्षतं च परिकल्पयेत्।
बलविकरणाय नम इति पुष्पाणि दापयेत्॥ ७५
बलाय नम इत्युक्त्वा धूपं दद्यात्प्रयत्नतः।
बलप्रमथनायेति सुदीपं चैव दापयेत्॥ ७६

इसके बाद '**रुद्राय नमः**' इस प्रकार कहकर पुनः आचमन कराये, '**कालाय नमः**'—ऐसा कहकर भलीभाँति निर्मित उत्तम गन्ध प्रदान करे। '**कलविकरणाय नमः**' ऐसा कहकर अक्षत प्रदान करे तथा '**बलविकरणाय नमः**' ऐसा उच्चारणकर पुष्प अर्पित करे। '**बलाय नमः**' ऐसा बोलकर यत्नपूर्वक धूप दे और '**बलप्रमथनाय नमः**' ऐसा कहकर उत्तम दीप प्रदान करे॥ ७४—७६॥

ब्रह्मभिश्च षडङ्गैश्च ततो मातृकया सह।
प्रणवेन शिवेनैव शक्तियुक्तेन च क्रमात्॥ ७७
मुद्राः प्रदर्शयेन्मह्यं तुभ्यं च वरवर्णिनि।
मयि प्रकल्पयेत्पूर्वमुपचारांस्ततस्त्वयि॥ ७८
यदा त्वयि प्रकुर्वीत स्त्रीलिंगं योजयेत्तदा।
इयानेव हि भेदोऽस्ति नान्यः पार्वति कश्चन॥ ७९

षडंग ब्रह्म मन्त्रों, मातृकासहित प्रणव, शिव और शक्तिसहित क्रमसे मुझे तथा आपको मुद्रा दिखाये। हे सुन्दरि! उसके बाद पहले मेरा पूजन करे तथा बादमें तुम्हारा पूजन करे। जब तुम्हारी पूजा करे, तब स्त्रीलिंग पदोंका प्रयोग करे। हे पार्वति! मात्र इतना ही भेद है और कुछ नहीं॥ ७७—७९॥

एवं ध्यानं पूजनं च कृत्वा सम्यग्विधानतः।
ममावरणपूजां च प्रारभेत विचक्षणः॥ ८०

इस प्रकार भलीभाँति विधिके अनुसार ध्यान और पूजनकर बुद्धिमान् पुरुष मेरी आवरणपूजा आरम्भ करे॥ ८०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायां शिवध्यानपूजनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें शिवध्यानपूजनवर्णन नामक सातवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

आवरणपूजा-विधि-वर्णन

ईश्वर उवाच

अत्रास्ति च महादेवि खल्वावरणपञ्चकम्।
पञ्चावरणपूजां तु प्रारभेत यथाक्रमम्॥ १
प्रथमं पूजितौ यत्र तत्रैव क्रमशः सुधीः।
गन्धाद्यैरर्चयेत्पूर्वं देवौ हेरम्बषण्मुखौ॥ २

ईश्वर बोले—हे महादेवि! मेरी पूजाके पाँच आवरण हैं। अतः क्रमके अनुसार पाँचों आवरणोंकी पूजा करनी चाहिये। जहाँसे दोनोंकी पूजा की गयी है, उसी क्रमसे बुद्धिमान् पुरुष गणेश एवं कार्तिकेयका गन्धादिसे पूजन करे॥ १-२॥

पञ्च ब्रह्माणि परितो वृत्तं सम्पूजयेत्क्रमात्।
ईशानदेशे पूर्वे च दक्षिणे चोत्तरे तथा॥ ३
पश्चिमे च ततस्तस्मिन्षडङ्गानि समर्चयेत्।
आग्नेये च तथैशाने नैर्ऋते वायुदेशके॥ ४
मध्ये नेत्रं तद्वदस्त्रं पूर्वादिपरितः क्रमात्।
प्रथमावरणं प्रोक्तं द्वितीयावरणं शृणु॥ ५

मण्डलमें स्थित वृत्तमें चारों ओर [सद्योजातादि] पंचब्रह्म देवताओंका क्रमसे पूजन करे। ईशानभागमें, पूर्वमें, दक्षिण, उत्तर तथा पश्चिममें छः अंगोंकी पूजा करे। आग्नेय, ईशान, नैर्ऋत्य, वायव्य एवं मध्यमें नेत्र एवं अस्त्र आदिकी पूर्वादि क्रमसे प्रतिष्ठाकर पूजा करे। इस प्रकार मैंने प्रथम आवरण [का पूजाक्रम] कहा, अब दूसरा आवरण सुनिये—॥ ३—५॥

अनन्तं पूर्वदिक्पत्रे सूक्ष्मं दक्षिणतस्तथा।
शिवोत्तमं पश्चिमत एकनेत्रं तथोत्तरे॥ ६
एकरुद्रं तथैशाने त्रिमूर्तिं वह्निदिग्दले।
श्रीकण्ठं नैर्ऋते वायौ शिखण्डीशं समर्चयेत्॥ ७

पूर्व दिशाके पत्रमें अनन्तकी, दक्षिण पत्रमें सूक्ष्मकी, पश्चिम दिशामें शिवोत्तमकी एवं उत्तर दिशामें एकनेत्रकी, एकरुद्रकी ईशानमें, त्रिमूर्तिकी आग्नेयमें, श्रीकण्ठकी नैर्ऋत्यमें तथा शिखण्डीशकी वायव्यमें स्थापनाकर पूजन करे॥ ६-७॥

द्वितीयावरणे चैव पूज्यास्ते चक्रवर्तिनः।
पूर्वद्वारस्य मध्ये तु वृषेशानं प्रपूजयेत्॥ ८

इस प्रकार द्वितीयावरणके चक्रमें निवास करनेवालोंकी पूजा करे। पूर्व द्वारके मध्यमें वृषेशानकी पूजा करे॥ ८॥

तद्दक्षिणे नन्दिनं च महाकालं तदुत्तरे।
भृंगीशं दक्षिणद्वारपश्चिमे सम्प्रपूजयेत्॥ ९
तत्पूर्वकोष्ठे गन्धाद्यैः सम्प्रपूज्य विनायकम्।
पश्चिमोत्तरकोष्ठे च वृषभं दक्षिणे गुहम्॥ १०

दक्षिण द्वारपर नन्दीश्वरका, उत्तरद्वारपर महाकालका तथा भृंगीशका दक्षिणद्वारके पृष्ठभागमें पूजन करे। उसके पूर्ववाले कोष्ठकपर विनायककी गन्धादिसे पूजाकर पश्चिमोत्तर कोष्ठमें वृषभकी और दक्षिणमें स्कन्दकी पूजा करे॥ ९-१०॥

उत्तरद्वारपूर्वे तु प्रदक्षिणविधानतः।
नामाष्टकविधानेन पूजयेदुच्यते हि तत्॥ ११
भवं शर्वं तथेशानं रुद्रं पशुपतिं पुनः।
उग्रं भीमं महादेवं तृतीयावरणं त्विदम् ॥ १२

अब उत्तरद्वारके पूर्व भागमें प्रदक्षिणक्रमसे जिन आठ नामोंद्वारा पूजा करे, उसे कह रहा हूँ। वे भव, शर्व, ईशान, रुद्र, पशुपति, उग्र, भीम और महादेव हैं, यह तृतीय आवरण है॥ ११-१२॥

यो वेदादौ स्वर इति समावाह्य महेश्वरम्।
पूजयेत्पूर्वदिग्भागे कमले कर्णिकोपरि॥ १३

'**यो वेदादौ स्वर**'—इत्यादि मन्त्रसे पूर्वदिग्भागकी कमलकर्णिकापर महादेवका आवाहन करके उनका पूजन करे॥ १३॥

ईश्वरं पूर्वदिक्पत्रे विश्वेशं दक्षिणे ततः।
उत्तरे परमेशानं सर्वेशं पश्चिमे यजेत्॥ १४

ईश्वरकी पूर्व दिशाके पत्रपर, विश्वेशकी दक्षिणदिशाके पत्रपर, परमेशानकी उत्तरदिशाके पत्रपर तथा सर्वेशकी पश्चिमदिशाके पत्रपर पूजा करे॥ १४॥

दक्षिणे तु यजेद् रुद्रमावोराजानमित्यृचा।
आवाह्य गन्धपुष्पाद्यैः कर्णिकायां दलेषु च॥ १५

शिवः पूर्वे दक्षिणतो हर उत्तरतो मृडः।
भवः पश्चिमदिक्पत्रे पूज्या एते यथाक्रमम्॥ १६

दक्षिणके पत्रपर '**आवो राजानम्**'—इस ऋचासे रुद्रका पूजन करे। उसके अनन्तर कर्णिकाओंमें एवं दलोंमें देवताओंको आवाहितकर गन्ध, पुष्प आदिसे उनका पूजन करे। शिवको पूर्वमें, हरको दक्षिणमें, मृडको उत्तरमें तथा भवको पश्चिम पत्रमें यथाक्रम आवाहित करके पूजन करे॥ १५-१६॥

उत्तरे विष्णुमावाह्य गन्धपुष्पादिभिर्यजेत्।
प्रतद्विष्णुरिति प्रोच्य कर्णिकायां दलेषु च॥ १७

उत्तरमें विष्णुका आवाहनकर गन्ध, पुष्पादिसे '**प्रतद्विष्णु**'—इस प्रकार मन्त्र पढ़कर कर्णिकामें तथा दलोंमें पूजन करे॥ १७॥

वासुदेवं पूर्वभागे दक्षिणे चानिरुद्धकम्।
सौम्ये संकर्षणं चैव प्रद्युम्नं पश्चिमे यजेत्॥ १८

पूर्वभागमें वासुदेवकी, दक्षिणमें अनिरुद्धकी, उत्तरमें संकर्षणकी और पश्चिम दिशामें प्रद्युम्नकी पूजा करे॥ १८॥

ब्रह्माणं पश्चिमे पद्मे समावाह्य समर्चयेत्।
हिरण्यगर्भः समवर्तत इति मन्त्रेण मन्त्रवित्॥ १९

हिरण्यगर्भं पूर्वस्यां विराजं दक्षिणे ततः।
उत्तरे पुष्करञ्चैव कालं पश्चिमतो यजेत्॥ २०

पश्चिमके कमलमें ब्रह्माजीका आवाहनकर पूजन करे। मन्त्रमर्मज्ञ '**हिरण्यगर्भः समवर्तत**'—इस मन्त्रसे हिरण्यगर्भका पूर्वमें, विराट्पुरुषका दक्षिणमें, पुष्करका उत्तरमें एवं कालपुरुषका पश्चिम दिशामें पूजन करे॥ १९-२०॥

सर्वोर्ध्वपङ्क्तौ पूर्वादिप्रदक्षिणविधानतः।
तत्तत्स्थानेषु संपूज्य लोकपालाननुक्रमात्॥ २१

पूर्वादि प्रदक्षिणविधिसे सबसे ऊपरकी पंक्तिमें उन-उन स्थानोंपर क्रमानुसार लोकपालोंकी पूजा करे॥ २१॥

रान्तं मान्तं तथा क्षान्तं लान्तं वान्तमपूर्वकम्।
सान्तं हान्तं च वेदाद्यं श्रीबीजं च दश क्रमात्॥ २२
बीजानि लोकपालानामेतैरेतान्समर्चयेत्।
नैर्ऋत्ये चोत्तरे तद्वदीशानस्य च दक्षिणे॥ २३
ब्रह्मविष्णू च विधिना पूजयेदुपचारकैः।
बाह्यरेखासु देवेशि पञ्चमावरणे यजेत्॥ २४

ॐ रां, ॐ मां, ॐ क्षां, ॐ लां, ॐ वां, ॐ शां, ॐ सां, ॐ हां, ॐ ऊँ, ॐ श्रीं—यही दस लोकपालोंके दस बीजमन्त्र हैं, इनका उद्धारकर क्रमसे उनकी पूजा करे। नैर्ऋत्य और उत्तरदिशामें ब्रह्मदेव एवं विष्णुका तथा दक्षिणमें ईशानका षोडशोपचारसे पूजन करे और पाँचवें आवरणकी बाह्य रेखाओंमें देवेशकी पूजा करे॥ २२—२४॥

श्रीमत्त्रिशूलमीशाने वज्रं माहेन्द्रदिङ्मुखे।
परशुं वह्निदिग्भागे याम्ये सायकमर्चयेत्॥ २५
नैर्ऋते तु यजेत्खड्गं पाशं वरुणगोचरे।
अंकुशं मारुते भागे पिनाकं चोत्तरे यजेत्॥ २६

ईशानमें ऐश्वर्यमय त्रिशूल, पूर्वमें वज्र, आग्नेयकोणमें परशु, दक्षिणमें बाण, नैर्ऋत्यकोणमें खड्ग, पश्चिममें पाश, वायव्यमें अंकुश और उत्तरभागमें पिनाकका पूजन करे॥ २५-२६॥

पश्चिमाभिमुखं रौद्रं क्षेत्रपालं समर्चयेत्।
यथाविधि विधानज्ञः शिवप्रीत्यर्थमेव च॥ २७

कृताञ्जलिपुटाः सर्वे चिन्त्याः स्मितमुखाम्बुजाः।
सादरं प्रेक्षमाणाश्च देवं देवीं च सर्वदा॥ २८

विधिवेत्ता पुरुषको चाहिये कि वह यथाविधि शिवजीकी प्रसन्नताके निमित्त रौद्र स्वरूपवाले पश्चिमाभिमुख क्षेत्रपालका पूजन करे। ऐसी भावना करे कि हास्ययुक्त मुखकमलवाले सभी देवता हाथ जोड़कर सादर देवाधिदेव महादेव तथा देवीकी ओर सतत देख रहे हैं॥ २७-२८॥

इत्थमावरणाभ्यर्चां कृत्वा विक्षेपशान्तये।
पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवं च शिवं वदेत्॥ २९

इस तरह आवरणकी पूजाकर विघ्नकी शान्तिके लिये पुनः देवेशकी अर्चना करके प्रणवसे युक्त शिवका '**ॐ शिव**' इस प्रकार स्मरण करे॥ २९॥

एवमभ्यर्च्य विधिवद् गन्धाद्यैरुपचारकैः।
उपचर्य ततो दद्यान्नैवेद्यं विधिसाधितम्॥ ३०
पुनराचमनीयं च दद्यादर्घ्यं यथा पुरा।
ततो निवेद्य पानीयं ताम्बूलं चोपदेशतः॥ ३१
नीराजनादिकं कृत्वा पूजाशेषं समापयेत्।
ध्यात्वा देवं च देवीं च मनुमष्टोत्तरं जपेत्॥ ३२

इस प्रकार गन्धादि उपचारोंसे विधिपूर्वक शिवकी पूजा करनेके पश्चात् [शास्त्रीय] विधिसे बनाया हुआ नैवेद्य उन्हें समर्पित करे। इसके बाद पहलेकी तरह आचमनीय तथा अर्घ्य प्रदान करे, फिर जल तथा ताम्बूल निवेदनकर नीराजन आदि करके शेष पूजा सम्पन्न करे। तदनन्तर देवाधिदेव शिव तथा शिवाका ध्यानकर एक सौ आठ बार उनके मन्त्रका जप करे॥ ३०—३२॥

तत उत्थाय रचितपुष्पाञ्जलिपुटः स्थितः।
जपेद् ध्यात्वा महादेवं यो देवानामिति क्रमात्॥ ३३

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्त इत्यन्तं परमेश्वरि।
पुष्पाञ्जलिं ततो दत्त्वा त्रिःप्रदक्षिणमाचरेत्॥ ३४

तत्पश्चात् उठकर हाथमें पुष्पांजलि लेकर स्थित हो जाय और महादेवका ध्यान करके '**यो देवानाम्**' से लेकर '**यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तः**' पर्यन्त जप करे. हे परमेश्वरि! पुनः पुष्पांजलि देकर तीन बार प्रदक्षिणा करे॥ ३३-३४॥

साष्टाङ्गं प्रणमेत्तं च भक्त्या परमयान्वितः।
पुनः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणमेत्पुनरेकधा॥ ३५

इसके पश्चात् अत्यन्त भक्तिभावसे युक्त हो साष्टांग प्रणाम करे, पुनः प्रदक्षिणा करके एक बार नमस्कार करे॥ ३५॥

स्थित्वासने समभ्यर्च्य देवं नामाष्टकेन च।
साधु वासाधु वा कर्म यद्यदाचरितं मया॥ ३६

तत्सर्वं भगवञ्छम्भो भवदाराधनं परम्।
इति शंखोदकेनैव सपुष्पेण समर्पयेत्॥ ३७

पूज्यं पुनः समभ्यर्च्य सार्थं नामाष्टकं जपेत्।
तदेव शृणु देवेशि संब्रुवे तव भक्तितः॥ ३८

तदनन्तर आसनपर बैठकर शिवके आठ नामोंके द्वारा पूजनकर उनकी प्रार्थना करके ऐसा कहे—हे भगवन्! हे शम्भो! मैंने जो कुछ भी विधियुक्त या विधिहीन कर्मानुष्ठान किया है, वह सब आपकी ही आराधना हो जाय, इस प्रकार कहकर पुष्पसहित शंख-जलसे पूजा उन्हींको समर्पितकर पुनः पूज्यकी पूजा करके उनके आठ नामोंका अर्थसहित जप करे। देवेशि! आपकी भक्तिसे [प्रसन्न होकर] अब मैं उसीको कह रहा हूँ, आप सुनें॥ ३६—३८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे षष्ठ्यां कैलाससंहितायामावरणपूजावर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत छठी कैलाससंहितामें आवरणपूजावर्णन नामक आठवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ ८॥

अथ नवमोऽध्यायः

प्रणवोपासनाकी विधि

ईश्वर उवाच

शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः।
संसारवैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः॥ १

ईश्वर बोले—परमात्मा शिवजीके मुख्य नाम हैं—शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह, संसारवैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा। ये आठ नाम शिवजीके प्रतिपादक

नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम्।
आद्यन्तपञ्चकं तत्र शान्त्यतीताद्यनुक्रमात्॥ २
संज्ञा सदाशिवादीनां पञ्चोपाधिपरिग्रहात्।
उपाधिविनिवृत्तौ तु यथास्वं विनिवर्तते॥ ३
पदमेव हि तं नित्यमनित्याः पदिनः स्मृताः।
पदानां परिवृत्तिः स्यान्मुच्यन्ते पदिनो यतः॥ ४
परिवृत्त्यन्तरे त्वेवं भूयस्तस्याप्युपाधिना।
आत्मान्तराभिधानं स्यात्पादाद्यं नामपञ्चकम्॥ ५

हैं, इनमें आदिसे पितामहपर्यन्त पाँच नामोंमें शान्त्यतीतादि पाँच उपाधियोंके ग्रहणक्रमसे शिवादि संज्ञाएँ ग्रहण की गयी हैं। उपाधिके निवृत्त हो जानेपर संज्ञाकी भी निवृत्ति हो जाती है; क्योंकि पद तो नित्य है किंतु पदपर रहनेवाले अनित्य हैं। पदोंकी परिवृत्ति होती रहती है, जिससे पदपर रहनेवाले हटते रहते हैं॥ १—४॥

पदोंकी परिवृत्तिके मध्यमें इसी प्रकार वैसी ही उपाधिसे युक्त इन्हीं पाँच नामोंसे दूसरी-दूसरी आत्माएँ पदस्थ होती रहती हैं॥ ५॥

अन्यत्तु त्रितयं नाम्नामुपादानादिभेदतः।
त्रिविधोपाधिरचनाच्छिव एव तु वर्तते॥ ६

इन पाँच नामोंके अतिरिक्त शेष जो तीन नाम हैं, वे जगत्के उपादान आदिके भेदसे तीन प्रकारकी उपाधिके कारण शिव ही हैं॥ ६॥

अनादिमलसंश्लेषप्रागभावात्स्वभावतः।
अत्यन्तपरिशुद्धात्मेत्यतोऽयं शिव उच्यते॥ ७
अथवाशेषकल्याणगुणैकघन ईश्वरः।
शिव इत्युच्यते सद्भिः शिवतत्त्वार्थवेदिभिः॥ ८

उन शिवमें अनादि मलके संश्लेषका पूर्वसे ही अभाव होनेसे वे अत्यन्त परिशुद्ध आत्मावाले हैं, इसीलिये उन्हें शिव नामसे जाना जाता है अथवा सभी कल्याणकारी गुणोंका घनीभूत एकमात्र आधार होनेसे ही ईश्वरको शिवतत्त्वके ज्ञाता पुरुष शिव कहते हैं॥ ७-८॥

त्रयोविंशतितत्त्वेभ्यः परा प्रकृतिरुच्यते।
प्रकृतेस्तु परं प्राहुः पुरुषं पञ्चविंशकम्॥ ९
यद्वेदादौ स्वरं प्राहुर्वाच्यवाचकभावतः।
वेदैकवेद्यं याथात्म्याद्वेदान्ते च प्रतिष्ठितम्॥ १०
स एव प्रकृतौ लीनो भोक्ता यः प्रकृतेर्यतः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः॥ ११
तदधीनप्रवृत्तित्वात्प्रकृतेः पुरुषस्य च।
अथवा त्रिगुणं तत्त्वं मायेयमिदमव्ययम्॥ १२
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम्।
मायाविमोचकोऽनन्तो महेश्वरसमन्वयात्॥ १३
रुद्दुःखं दुःखहेतुर्वा तद् द्रावयति यः प्रभुः।
रुद्र इत्युच्यते तस्माच्छिवः परमकारणम्॥ १४

तेईस तत्त्वोंके अतिरिक्त चौबीसवाँ तत्त्व पराप्रकृति है और इस चौबीसवें प्रकृतितत्त्वसे परे पचीसवें तत्त्वको पुरुष कहा जाता है, जिसको वेद आदिमें वाच्य-वाचकभावसे स्वर कहा जाता है, जो केवल वेदके द्वारा ज्ञेय है और जो वेदान्त अर्थात् दो उपनिषदोंमें प्रतिष्ठित है। वही प्रकृतिमें लीन होकर प्रकृतिका भोग करता है। उस प्रकृतिलीन पुरुषसे जो परे हैं, वही महेश्वर जाने जाते हैं; क्योंकि पुरुष और प्रकृतिकी प्रवृत्ति उसके अधीन है अथवा अव्यय त्रिगुणतत्त्व ही माया है, माया ही प्रकृति है और जिसकी वह माया है, उसी मायीको महेश्वर जानना चाहिये, क्योंकि उन अनन्त महेश्वरको प्राप्त कर लेनेपर वे मायासे मुक्त कर देते हैं। रुत्को दुःख अथवा दुःखका कारण कहा जाता है, उसे वे प्रभावसम्पन्न तथा जगत्के परमकारण भगवान् शंकर विनष्ट कर देते हैं, अतः उनको 'रुद्र' कहा जाता है॥ ९—१४॥

शिवतत्त्वादिभूम्यन्तं शरीरादि घटादि च।
व्याप्याधितिष्ठति शिवस्तस्माद्विष्णुरुदाहृतः॥ १५

शिवतत्त्वसे लेकर पृथ्वीतत्त्वपर्यन्त समस्त शरीरोंमें घटाकाशवत् शिवजी व्याप्त होकर स्थित हैं, अतः उन्हें 'विष्णु' कहा जाता है॥ १५॥

जगतः पितृभूतानां शिवो मूर्त्यात्मनामपि।
पितृभावेन सर्वेषां पितामह उदीरितः॥ १६

निदानज्ञो यथा वैद्यो रोगस्य विनिवर्तकः।
उपायैर्भेषजैस्तद्वल्लयभोगाधिकारकः ॥ १७

संसारस्येश्वरो नित्यं स्थूलस्य विनिवर्तकः।
संसारवैद्य इत्युक्तः सर्वतत्त्वार्थवेदिभिः॥ १८

संसारको उत्पन्न करनेवाले पितृस्थानीय समस्त शरीरधारी ब्रह्मादिकोंके भी पिता होनेसे वे पितामह कहे गये हैं। जिस प्रकार निदान जाननेवाला वैद्य चिकित्सकीय उपायों तथा ओषधियोंसे रोगको नष्ट कर देता है, उसी प्रकार मोक्ष तथा भोग देकर स्थूल संसारसे सर्वथा मुक्त कर देनेवाले उन जगदीश्वरको समस्त तत्त्वार्थविदोंने संसारका वैद्य कहा है॥ १६—१८॥

दशार्द्धज्ञानसिद्ध्यर्थमिन्द्रियेषु च सत्स्वपि।
त्रिकालभाविनो भावान्स्थूलान्सूक्ष्मानशेषतः॥ १९

अणवो नैव जानन्ति मायार्णवमलावृताः।
असत्स्वपि च सर्वेषु सिद्धसर्वार्थवेदिषु॥ २०

यद्यथावस्थितं वस्तु तत्तथैव सदाशिवः।
अयत्नेनैव जानाति तस्मात्सर्वज्ञ उच्यते॥ २१

शब्दादि पंचविषयोंके ज्ञानके लिये यद्यपि जीवको इन्द्रियाँ प्राप्त हैं तथापि तीनों कालोंमें होनेवाली स्थूल तथा सूक्ष्म क्रियाओंको मायार्णवमलसे आवृत मलिन वह जीव समग्रतया जाननेमें समर्थ नहीं होता। सिद्ध, साध्यादि सभी पदार्थोंका ज्ञान करानेवाली इन्द्रियोंसे रहित होकर भी सदाशिव जो वस्तु जिस रूपमें स्थित है, उसे उसी रूपमें बिना यत्नके ही जान लेते हैं, इसलिये उन्हें सर्वज्ञ कहा जाता है॥ १९—२१॥

सर्वात्मा परमैरेभिर्गुणैर्नित्यसमन्वयात्।
स्वस्मात्परात्मविरहात्परमात्मा शिवः स्वयम्॥ २२

वे इन सर्वज्ञत्वादि गुणोंसे नित्य युक्त हैं, सर्वात्मस्वरूप हैं, उनमें अपनी आत्मा तथा परमात्माका भेद नहीं रहता, इसलिये वे शिव स्वयं परमात्मा हैं॥ २२॥

इति स्तुत्वा महादेवं प्रणवात्मानमव्ययम्।
अर्घ्यं पाद्यं पुरो दत्त्वा पश्चादीशानमस्तके॥ २३

पुनरभ्यर्च्य देवेशं प्रणवेन समाहितः।
हस्तेन बद्धाञ्जलिना पूजापुष्पं प्रगृह्य च॥ २४

उन्मन्यन्तं शिवं नीत्वा वामनासापुटाध्वना।
देवीमुद्वास्य च ततो दक्षनासापुटाध्वना॥ २५

शिव एवाहमस्मीति तदैक्यमनुभूय च।
सर्वावरणदेवांश्च पुनरुद्वासयेद् हृदि॥ २६

विद्यापूजां गुरोः पूजां कृत्वा पश्चाद्यथाक्रमम्।
शङ्खार्घपात्रमन्त्रांश्च हृदये विन्यसेत्क्रमात्॥ २७

निर्माल्यं च समर्प्याथ चण्डीशायेशगोचरे।
पुनश्च संयतप्राण ऋष्यादिकमथोच्चरेत्॥ २८

इस प्रकार प्रणवस्वरूप अव्यय परमात्माकी स्तुतिकर उनके सम्मुख अर्घ्य तथा पाद्य प्रदान करके बादमें ईशानके मस्तकपर एकाग्रचित्त हो ॐकारमन्त्रसे देवेशका अर्चन करे और पूजाके पुष्पोंको लेकर अंजलि बाँधकर बायीं ओरकी नासिकाके मार्गसे उन्मनी नाड़ीपर्यन्त शिवको ले जाकर दाहिने नासापुटके मार्गसे देवीको ले जाकर 'मैं ही शिव हूँ'—इस प्रकारकी भावनाकर शिवजीसे तादात्म्य स्थापित करके सभी आवरण देवगणोंका हृदयमें ध्यान करे और इसके बाद क्रमसे गुरु तथा विद्याकी पूजाकर शंखरूप अर्घ्यपात्रसे अर्घ्यपाद्यादि प्रदान करके मन्त्रद्वारा हृदयमें न्यास करे। तत्पश्चात् निर्माल्यको सदाशिवके समक्ष ही चण्डेश्वरको अर्पितकर पुनः प्राणायाम करके ऋषि आदिका उच्चारण करे॥ २३—२८॥

कैलासप्रस्तरो नाम मण्डलं परिभाषितम्।
अर्चयेन्नित्यमेवैतत्पक्षे वा मासि मासि वा॥ २९

षण्मासे वत्सरे वापि चातुर्मास्यादिपर्वणि।
अवश्यं च समभ्यर्चेन्नित्यं मल्लिङ्गमास्तिकः॥ ३०

इस प्रकार मैंने कैलासप्रस्तर नामक मण्डलका वर्णन किया, इसी प्रक्रियासे नित्य, पक्षमें, महीने-महीने, छः मासपर, वर्षमें या चातुर्मास्य आदि पर्वमें आस्तिकपुरुष मेरे लिंगकी पूजा अवश्य करे॥ २९-३०॥

तस्मिन्क्रमे महादेवि विशेषः कोऽपि कथ्यते।
उपदेशदिने लिंगं पूजितं गुरुणा सह॥ ३१
गृह्णीयादर्चयिष्यामि शिवमाप्राणसंक्षयम्।
एवं त्रिवारमुच्चार्य शपथं गुरुसन्निधौ॥ ३२
ततः समर्चयेन्नित्यं पूर्वोक्तविधिना प्रिये।
अर्घं समर्पयेल्लिंगमूर्द्धन्यर्घ्योदकेन च॥ ३३
प्रणवेन समभ्यर्च्य धूपदीपौ समर्पयेत्।
ऐशान्यां चण्डमाराध्य निर्माल्यं च निवेदयेत्॥ ३४

हे महादेवि! इस विषयमें कुछ लोगोंका विशेष विचार यह भी है कि दीक्षाके दिन गुरुके साथ पूजित लिंगको हाथमें ग्रहण करे और कहे कि मैं प्राणक्षयपर्यन्त निरन्तर शिवजीकी पूजा करता रहूँगा—इस प्रकार तीन बार गुरुके निकट प्रतिज्ञाकर हे प्रिये! पूर्वोक्त विधिसे शिवजीका नित्य पूजन करे। अर्घ्योदकके द्वारा लिंगके मस्तकपर अर्घ्य समर्पित करे और प्रणवसे पूजनकर धूप, दीप [तथा अन्य उपचार] अर्पित करे। ईशान दिशामें चण्डकी पूजाकर उन्हें निर्माल्य निवेदित करे॥ ३१-३४॥

प्रक्षाल्य लिङ्गं वेदीं च वस्त्रपूतैर्जलैस्ततः।
निःक्षिप्य पुष्पं शिरसि लिंगस्य प्रणवेन तु॥ ३५
आधारशक्तिमारभ्य शुद्धविद्यासनावधि।
विभाव्य सर्वं मनसा स्नापयेत्परमेश्वरम्॥ ३६
पञ्चगव्यादिभिर्द्रव्यैर्यथाविभवसम्भृतैः।
केवलैर्वा जलैः शुद्धैः सुरभिद्रव्यवासितैः॥ ३७
पावमानेन रुद्रेण नीलेन त्वरितेन च।
ऋग्भिश्च सामभिर्वापि ब्रह्मभिश्चैव पञ्चभिः॥ ३८
स्नापयेद्देवदेवेशं प्रणवेन शिवेन च।
विशेषार्घ्योदकेनापि प्रणवेनाभिषेचयेत्॥ ३९

वस्त्रद्वारा छाने गये जलसे लिंग और वेदीका प्रक्षालन करे। फिर लिंगके मस्तकपर ॐकारका उच्चारणकर पुष्प अर्पित करके आधारशक्तिसे आरम्भकर शुद्ध विद्यासनपर्यन्त शक्तियोंका मनमें स्मरणकर परमेश्वरको स्नान कराये। अपने ऐश्वर्यानुसार पंचगव्यादि द्रव्योंसे अथवा सुगन्धित द्रव्यसे वासित शुद्ध जलसे 'पवमानसूक्त' द्वारा अथवा रुद्रसूक्तके द्वारा अथवा नीलसूक्तसे या त्वरित सूक्तसे अथवा सामवेदके मन्त्रोंसे अथवा सद्योजातादि पाँच मन्त्रोंसे अथवा '**ॐ नमः शिवाय**'—इस मन्त्रसे या प्रणवसे शिवजीको स्नान कराये। प्रणवके द्वारा विशेषार्घ्यके जलसे शिवजीको स्नान कराये॥ ३५—३९॥

विशोध्य वाससा पुष्पं लिङ्गमूर्धनि विन्यसेत्।
पीठे लिङ्गं समारोप्य सूर्याद्यर्चां समाचरेत्॥ ४०

इसके पश्चात् वस्त्रके द्वारा लिंगका प्रोक्षणकर सुगन्धित पुष्पोंको लिंगके ऊपर चढ़ाये तथा पीठपर लिंगको स्थापितकर सूर्य आदिका अर्चन करे॥ ४०॥

आधारशक्त्यनन्तौ द्वौ पीठाधस्तात्समर्चयेत्।
सिंहासनं तदूर्ध्वं तु समभ्यर्च्य यथाक्रमम्॥ ४१

पीठके नीचे आधारशक्ति तथा अनन्तकी पूजा करे। इसके पश्चात् उसके ऊपर सिंहासन रखकर यथाक्रम उसका भी पूजन करे॥ ४१॥

अथोर्ध्वच्छदनम्पीठपादे स्कन्दं समर्चयेत्।
लिङ्गे मूर्तिं समाकल्प्य मां त्वया सह पूजयेत्॥ ४२

ऊर्ध्वच्छदनकी [पूजा] तथा पीठपादमें स्कन्दकी पूजा करनेके अनन्तर लिंगमें मूर्तिकी कल्पनाकर तुम्हारे साथ मेरी पूजा करे॥ ४२॥

सम्यग् भक्त्या विधानेन यतिर्मद्ध्यानतत्परः।
एवं मया ते कथितमतिगुह्यमिदं प्रिये॥ ४३
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित्।
मम भक्ताय दातव्यं यतये वीतरागिणे॥ ४४

यह सब कार्य यति मेरे ध्यानमें तत्पर हो भक्तिपूर्वक करे। हे प्रिये! पूजाकी यह अतिगुह्य विधि मैंने तुमसे कही। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखना चाहिये और जिस किसीको नहीं दे देना चाहिये। मेरे भक्त तथा रागरहित यतिको ही इसे प्रदान करे॥ ४३-४४॥

गुरुभक्ताय शान्ताय मदर्थे योगभागिने।
ममाज्ञामतिलंघ्यैतद्यो ददाति विमूढधीः॥ ४५
स नारकी मम द्रोही भविष्यति न संशयः।
मद्भक्तदानाद्देवेशि मत्प्रियश्च भवेद् ध्रुवम्।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगान्मत्सान्निध्यमवाप्नुयात्॥ ४६

गुरुभक्त, शान्तचित्त तथा मेरी प्राप्तिके लिये योगपरायण [यति]-को ही इसे प्रदान करे, किंतु मेरी आज्ञाका उल्लंघनकर जो बुद्धिहीन इसे अपात्रको देता है, वह मेरा द्रोही है और वह नरकमें जायगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे देवेशि! इस पूजाको जो मेरे भक्तोंको देता है, वह मेरा प्रिय होता है, वह इस लोकके सभी भोगोंको भोगकर अन्तमें मेरा सान्निध्य प्राप्त कर लेता है॥ ४५-४६॥

व्यास उवाच

एतच्छ्रुत्वा महादेवी महादेवेन भाषितम्।
स्तुत्वा तु विविधैः स्तोत्रैर्देवं वेदार्थगर्भितैः॥ ४७
श्रीमत्पादाब्जयोः पत्युः प्रणामं परमेश्वरी।
अतिप्रहृष्टहृदया मुमोद मुनिसत्तमाः॥ ४८
अतिगुह्यमिदं विप्राः प्रणवार्थप्रकाशकम्।
शिवज्ञानपरं ह्येतद्भवतामार्तिनाशनम्॥ ४९

व्यासजी बोले—हे मुनिगणो! शिवजीके इस प्रकारके वचनको सुनकर अतिप्रसन्न हृदयवाली परमेश्वरी पार्वती वेदार्थयुक्त अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुतिकर तथा अपने पतिके श्रीसम्पन्न चरण-कमलोंमें प्रेमपूर्वक नमस्कारकर बहुत ही हर्षित हुईं॥ ४७-४८॥

हे ब्राह्मणो! प्रणवार्थकी प्रकाशिका यह विधि अत्यन्त गुप्त है, शिवज्ञानसे पूर्ण है और आपलोगोंके सभी दुःखोंको दूर करनेवाली है॥ ४९॥

सूत उवाच

इत्युक्त्वा मुनिशार्दूलः पाराशर्यो महातपाः।
पूजितः परया भक्त्या मुनिभिर्वेदवादिभिः॥ ५०
कैलासाद्रिमनुस्मृत्य ययौ तस्मात्तपोवनात्।
तेऽपि प्रहृष्टहृदयाः सत्रान्ते परमेश्वरम्॥ ५१
सम्पूज्य परया भक्त्या सोमं सोमार्धशेखरम्।
यमादियोगनिरताः शिवध्यानपराभवन्॥ ५२

सूतजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठो! इस प्रकार कहकर महातपस्वी पराशरपुत्र व्यासदेव वेदवेत्ता महर्षियोंसे परम भक्तिपूर्वक पूजित हो [शिवजीका] स्मरणकर उस तपोवनसे कैलासपर्वतकी ओर चले गये। ऋषिगण भी प्रसन्नचित्त होकर यज्ञके अन्तमें उत्तम भक्तिभावपूर्वक चन्द्रशेखर परमेश्वर शंकरका पूजनकर यमादि योगोंमें तत्पर हो शिवध्यानपरायण हो गये॥ ५०—५२॥

गुहाय कथितं ह्येतद्देव्या तेनापि नन्दिने।
सनत्कुमारमुनये प्रोवाच भगवान् हि सः॥ ५३
तस्माल्लब्धं मद्गुरुणा व्यासेनामिततेजसा।
तस्माल्लब्धमिदं पुण्यं मयापि मुनिपुङ्गवाः॥ ५४

हे मुनिश्रेष्ठो! इस कथाको देवीने स्कन्दसे, स्कन्दने नन्दीसे, भगवान् नन्दीने मुनिवर सनत्कुमारसे कहा था और सनत्कुमारने भगवान् वेदव्याससे कहा। इसके पश्चात् उन महातेजस्वी व्यासजीद्वारा यह पवित्र प्रसंग मैंने प्राप्त किया॥ ५३-५४॥

मया वः श्रावितं ह्येतद् गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
ज्ञात्वा शिवप्रियान्भक्त्या भवतो गिरिशप्रियम्॥ ५५

[हे मुनिश्रेष्ठ!] मैंने यह गुह्यातिगुह्य तथा शिवप्रिय चरित्र आपलोगोंको शिवभक्त जानकर भक्तिपूर्वक सुनाया॥ ५५॥

भवद्भिरपि दातव्यमेतद् गुह्यं शिवप्रियम्।
यतिभ्यः शान्तचित्तेभ्यो भक्तेभ्यः शिवपादयोः॥ ५६

शिवजीको प्रिय, अत्यन्त गुप्त तथा प्रणवार्थप्रकाशक, जो यह चरित्र है, उसे आपलोगोंको भी शिवजीके चरणोंमें भक्ति रखनेवाले शान्तचित्त यतियोंको ही देना चाहिये॥ ५६॥

एतदुक्त्वा महाभागः सूतः पौराणिकोत्तमः।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन चचार पृथिवीमिमाम्॥ ५७

पुराणवेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी इस प्रकार कहकर तीर्थयात्राके प्रसंगसे पृथ्वीपर भ्रमण करने लगे॥ ५७॥

तेषां सर्वेषु शास्त्रेषु मयैव नियमः कृतः ॥ ५९

तत्रादौ संप्रवक्ष्यामि मन्त्रसंग्रहणं शुभम्।
यं विना निष्फलं जाप्यं येन वा सफलं भवेत्॥ ६०

करनेमें अत्यन्त विवश (असमर्थ) नहीं हो गये हैं, उनके लिये सब शास्त्रोंमें मैंने ही नियम बनाया है, उस नियमका उन्हें पालन करना चाहिये। अब मैं पहले मन्त्रकी दीक्षा लेनेका शुभ विधान बता रहा हूँ, जिसके बिना मन्त्र-जप निष्फल होता है और जिसके होनेसे जप-कर्म अवश्य सफल होता है॥ ५८—६०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-माहात्म्यवर्णन नामक तेरहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १३॥

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

गुरुसे मन्त्र लेने तथा उसके जप करनेकी विधि, पाँच प्रकारके जप तथा उनकी महिमा, मन्त्रगणनाके लिये विभिन्न प्रकारकी मालाओंका महत्त्व तथा अंगुलियोंके उपयोगका वर्णन, जपके लिये उपयोगी स्थान तथा दिशा, जपमें वर्जनीय बातें, सदाचारका महत्त्व, आस्तिकताकी प्रशंसा तथा पंचाक्षर-मन्त्रकी विशेषताका वर्णन

ईश्वर उवाच

आज्ञाहीनं क्रियाहीनं श्रद्धाहीनं वरानने।
आज्ञार्थं दक्षिणाहीनं सदा जप्तं च निष्फलम्॥ १

ईश्वर (महादेवजी) कहते हैं—वरानने! आज्ञाहीन, क्रियाहीन, श्रद्धाहीन तथा विधिके पालनार्थ आवश्यक दक्षिणासे हीन जो जप किया जाता है, वह सदा निष्फल होता है॥ १॥

आज्ञासिद्धं क्रियासिद्धं श्रद्धासिद्धं ममात्मकम्।
एवं चेद्दक्षिणायुक्तं मन्त्रसिद्धिर्महत्फलम्॥ २

मेरा स्वरूपभूत मन्त्र यदि आज्ञासिद्ध, क्रियासिद्ध और श्रद्धासिद्ध होनेके साथ ही दक्षिणासे भी युक्त हो तो उसकी सिद्धि होती है और उससे महान् फल प्राप्त होता है॥ २॥

उपगम्य गुरुं विप्रमाचार्यं तत्त्ववेदिनम्।
जापिनं सद्गुणोपेतं ध्यानयोगपरायणम्॥ ३
तोषयेत्तं प्रयत्नेन भावशुद्धिसमन्वितः।

शिष्यको चाहिये कि वह पहले तत्त्ववेत्ता आचार्य, जपशील, सद्‌गुणसम्पन्न, ध्यान-योगपरायण एवं ब्राह्मण गुरुकी सेवामें उपस्थित हो, मनमें शुद्धभाव रखते हुए प्रयत्नपूर्वक उन्हें संतुष्ट करे॥ ३१/२॥

वाचा च मनसा चैव कायेन द्रविणेन च॥ ४
आचार्यं पूजयेद्विप्रः सर्वदातिप्रयत्नतः।
हस्त्यश्वरथरत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च॥ ५
भूषणानि च वासांसि धान्यानि च धनानि च।
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या च विभवे सति॥ ६
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः।
पश्चान्निवेद्य स्वात्मानं गुरवे सपरिच्छदम्॥ ७

ब्राह्मण साधक अपने मन, वाणी, शरीर और धनसे आचार्यका पूजन करे। वह वैभव हो तो गुरुको भक्तिभावसे हाथी, घोड़े, रथ, रत्न, क्षेत्र, वस्त्राभूषण, धान्य, धन और गृह आदि अर्पित करे। जो अपने लिये सिद्धि चाहता हो, वह धनके दानमें कृपणता न करे। तदनन्तर सब सामग्रियोंसहित अपने-आपको गुरुकी सेवामें अर्पित कर दे॥ ४—७॥

एवं संपूज्य विधिवद्यथाशक्ति त्ववञ्चयन्।
आददीत गुरोर्मंत्रं ज्ञानं चैव क्रमेण तु॥ ८

एवं तुष्टो गुरुः शिष्यं पूजकं वत्सरोषितम्।
शुश्रूषुमनहङ्कारं स्नातं शुचिमुपोषितम्॥ ९

स्नापयित्वा विशुद्ध्यर्थं पूर्णकुंभघृतेन वै।
जलेन मन्त्रशुद्धेन पुण्यद्रव्ययुतेन च॥ १०

अलंकृत्य सुवेषं च गन्धस्रग्वस्त्रभूषणैः।

पुण्याहं वाचयित्वा च ब्राह्मणानभिपूज्य च॥ ११

समुद्रतीरे नद्यां च गोष्ठे देवालयेऽपि वा।
शुचौ देशे गृहे वापि काले सिद्धिकरे तिथौ॥ १२

नक्षत्रे शुभयोगे च सर्वदोषविवर्जिते।
अनुगृह्य ततो दद्याज्ज्ञानं मम यथाविधि॥ १३

स्वरेणोच्चारयेत्सम्यगेकान्तेऽतिप्रसन्नधीः।
उच्चार्योच्चारयित्वा तमावयोर्मन्त्रमुत्तमम्॥ १४

शिवं चास्तु शुभं चास्तु शोभनोऽस्तु प्रियोऽस्त्विति।
एवं दद्याद् गुरुर्मन्त्रमाज्ञां चैव ततः परम्॥ १५

एवं लब्ध्वा गुरोर्मन्त्रमाज्ञां चैव समाहितः।
सङ्कल्प्य च जपेन्नित्यं पुरश्चरणपूर्वकम्॥ १६

यावज्जीवं जपेन्नित्यमष्टोत्तरसहस्रकम्।
अनन्यस्तत्परो भूत्वा स याति परमां गतिम्॥ १७

जपेदक्षरलक्षं वै चतुर्गुणितमादरात्।
नक्ताशी संयमी यः स पौरश्चरणिकः स्मृतः॥ १८

यः पुरश्चरणं कृत्वा नित्यजापी भवेत्पुनः।
तस्य नास्ति समो लोके स सिद्धः सिद्धिदो भवेत्॥ १९

इस प्रकार यथाशक्ति निश्छलभावसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके गुरुसे मन्त्र एवं ज्ञानका उपदेश क्रमशः ग्रहण करे। इस तरह संतुष्ट हुए गुरु अपने पूजक शिष्यको, जो एक वर्षतक उनकी सेवामें रह चुका हो, गुरुकी सेवामें उत्साह रखनेवाला हो, अहंकाररहित हो और उपवासपूर्वक स्नान करके शुद्ध हो गया हो, पुनः विशेष शुद्धिके लिये पूर्ण कलशमें रखे हुए घृतसे तथा पवित्र द्रव्ययुक्त मन्त्रशुद्ध जलसे नहलाकर चन्दन, पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा अलंकृत करके उसे सुन्दर वेश-भूषासे विभूषित करे॥ ८—१०½॥

तत्पश्चात् शिष्यसे ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन करवाकर और ब्राह्मणोंकी पूजा करके समुद्रतटपर, नदीके किनारे, गोशालामें, देवालयमें, किसी भी पवित्र स्थानमें अथवा घरमें सिद्धिदायक काल आनेपर शुभ तिथि, शुभ नक्षत्र एवं सर्वदोषरहित शुभ योगमें गुरु अपने उस शिष्यको अनुग्रहपूर्वक विधिके अनुसार मेरा ज्ञान दे॥ ११—१३॥

एकान्त स्थानमें अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो उच्चस्वरसे हम दोनोंके उस उत्तम मन्त्रका शिष्यसे भलीभाँति उच्चारण कराये। बारंबार उच्चारण कराकर शिष्यको इस प्रकार आशीर्वाद दे—'तुम्हारा कल्याण हो, मंगल हो, शोभन हो, प्रिय हो' इस तरह गुरु शिष्यको मन्त्र और तदुपरान्त आज्ञा प्रदान करे॥ १४-१५॥

इस प्रकार गुरुसे मन्त्र और आज्ञा पाकर शिष्य एकाग्रचित्त हो संकल्प करके पुरश्चरणपूर्वक प्रतिदिन उस मन्त्रका जप करता रहे। वह जबतक जीये, तबतक अनन्यभावसे तत्परतापूर्वक नित्य एक हजार आठ मन्त्रोंका जप किया करे। जो ऐसा करता है, वह परम गतिको प्राप्त होता है॥ १६-१७॥

जो प्रतिदिन संयमसे रहकर केवल रातमें भोजन करता है और मन्त्रके जितने अक्षर हैं, उतने लाखका चौगुना जप आदरपूर्वक पूरा कर देता है, वह 'पौरश्चरणिक' कहलाता है। जो पुरश्चरण करके प्रतिदिन जप करता रहता है, उसके समान इस लोकमें दूसरा कोई नहीं है। वह सिद्धिदायक सिद्ध हो जाता है॥ १८-१९॥

स्नानं कृत्वा शुचौ देशे बद्ध्वा रुचिरमासनम्।
त्वया मां हृदि संचिन्त्य संचिन्त्य स्वगुरुं ततः॥ २०

उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा मौनी चैकाग्रमानसः।
विशोध्य पञ्चतत्त्वानि दहनप्लावनादिभिः॥ २१

मन्त्रन्यासादिकं कृत्वा सकलीकृतविग्रहः।
आवयोर्विग्रहौ ध्यायन्प्राणापानौ नियम्य च॥ २२

विद्यास्थानं स्वकं रूपं ऋषिं छन्दोऽधिदैवतम्।
बीजं शक्तिं तथा वाक्यं स्मृत्वा पञ्चाक्षरीं जपेत्॥ २३

साधकको चाहिये कि वह शुद्ध देशमें स्नान करके सुन्दर आसन बाँधकर अपने हृदयमें तुम्हारे साथ मुझ शिवका और अपने गुरुका चिन्तन करते हुए उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह किये मौनभावसे बैठे, चित्तको एकाग्र करे तथा दहन-प्लावन आदिके द्वारा पाँचों तत्त्वोंका शोधन करके मन्त्रका न्यास आदि करे। इसके बाद सकलीकरणकी क्रिया सम्पन्न करके प्राण और अपानका नियमन करते हुए हम दोनोंके स्वरूपका ध्यान करे और विद्यास्थान, अपने रूप, ऋषि, छन्द, देवता, बीज, शक्ति तथा मन्त्रके वाच्यार्थरूप मुझ परमेश्वरका स्मरण करके पंचाक्षरीका जप करे॥ २०—२३॥

उत्तमं मानसं जाप्यमुपांशुं चैव मध्यमम्।
अधमं वाचिकं प्राहुरागमार्थविशारदाः॥ २४

मानस जप उत्तम है, उपांशु जप मध्यम है तथा वाचिक जप उससे निम्नकोटिका माना गया है—ऐसा आगमार्थविशारद विद्वानोंका कथन है॥ २४॥

उत्तमं रुद्रदैवत्यं मध्यमं विष्णुदैवतम्।
अधमं ब्रह्मदैवत्यमित्याहुरनुपूर्वशः॥ २५

रुद्रसे अधिष्ठित [मानस] जप उत्तम कहा गया है, विष्णुसे अधिष्ठित [उपांशु] जप मध्यम कहा जाता है तथा ब्रह्मासे अधिष्ठित [वाचिक] जप अधम कहलाता है—ऐसा क्रमशः समझना चाहिये॥ २५॥

यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टास्पष्टपदाक्षरैः।
मन्त्रमुच्चारयेद्वाचा वाचिकोऽयं जपः स्मृतः॥ २६

जो ऊँचे-नीचे स्वरसे युक्त तथा स्पष्ट और अस्पष्ट पदों एवं अक्षरोंके साथ मन्त्रका वाणीद्वारा उच्चारण करता है, उसका यह जप 'वाचिक' कहलाता है॥ २६॥

जिह्वामात्रपरिस्पंदादीषदुच्चारितोऽपि वा।
अपरैरश्रुतः किञ्चिच्छ्रुतो वोपांशुरुच्यते॥ २७

जिस जपमें केवल जिह्वामात्र हिलती है अथवा बहुत धीमे स्वरसे अक्षरोंका उच्चारण होता है तथा जो दूसरोंके कानमें पड़नेपर भी उन्हें कुछ सुनायी नहीं देता, ऐसे जपको 'उपांशु' कहते हैं॥ २७॥

धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद्वर्णं पदात्पदम्।
शब्दार्थचिन्तनं भूयः कथ्यते मानसो जपः॥ २८

जिस जपमें अक्षर-पङ्क्तिका एक वर्णसे दूसरे वर्णका, एक पदसे दूसरे पदका तथा शब्द और अर्थका मनके द्वारा बारंबार चिन्तनमात्र होता है, वह 'मानस' जप कहलाता है॥ २८॥

वाचिकस्त्वेक एव स्यादुपांशुः शतमुच्यते।
साहस्रं मानसः प्रोक्तः सगर्भस्तु शताधिकः॥ २९

वाचिक जप एकगुना ही फल देता है, उपांशु जप सौगुना फल देनेवाला बताया जाता है, मानस जपका फल सहस्रगुना कहा गया है तथा सगर्भ जप उससे सौगुना अधिक फल देनेवाला है॥ २९॥

प्राणायामसमायुक्तः सगर्भो जप उच्यते।
आद्यन्तयोरगर्भोऽपि प्राणायामः प्रशस्यते॥ ३०

प्राणायामपूर्वक जो जप होता है, उसे 'सगर्भ' जप कहते हैं। अगर्भ जपमें भी आदि और अन्तमें प्राणायाम कर लेना श्रेष्ठ बताया गया है॥ ३०॥

चत्वारिंशत्समावृत्तीः प्राणानायम्य संस्मरेत्।
मन्त्रं मन्त्रार्थविद्धीमानशक्तः शक्तितो जपेत्॥ ३१

मन्त्रार्थवेत्ता बुद्धिमान् साधक प्राणायाम करते समय चालीस बार मन्त्रका स्मरण कर ले। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार जितना हो सके, उतने ही मन्त्रोंका मानसिक जप कर ले॥ ३१ ॥

पञ्चकं त्रिकमेकं वा प्राणायामं समाचरेत्।
अगर्भं वा सगर्भं वा सगर्भस्तत्र शस्यते॥ ३२

पाँच, तीन अथवा एक बार अगर्भ या सगर्भ प्राणायाम करे। इन दोनोंमें सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है॥ ३२ ॥

सगर्भादपि साहस्रं सध्यानो जप उच्यते।
एषु पञ्चविधेष्वेकः कर्त्तव्यः शक्तितो जपः॥ ३३

सगर्भकी अपेक्षा भी ध्यानसहित जप सहस्रगुना फल देनेवाला कहा जाता है। इन पाँच प्रकारके जपोंमेंसे कोई एक जप अपनी शक्तिके अनुसार करना चाहिये॥ ३३ ॥

अङ्गुल्या जपसंख्यानमेकमेवमुदाहृतम्।
रेखयाष्टगुणं विद्यात्पुत्रजीवैर्दशाधिकम्॥ ३४

शतं स्याच्छंखमणिभिः प्रवालैस्तु सहस्रकम्।
स्फाटिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमुच्यते॥ ३५

पद्माक्षैर्दशलक्षं तु सौवर्णैः कोटिरुच्यते।
कुशग्रंथ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्॥ ३६

अँगुलीसे जपकी गणना करना एकगुना बताया गया है। रेखासे गणना करना आठगुना उत्तम समझना चाहिये। पुत्रजीव (जियापोता)-के बीजोंकी मालासे गणना करनेपर जपका दसगुना अधिक फल होता है। शंखके मनकोंसे सौ गुना, मूँगोंसे हजारगुना, स्फटिकमणिकी मालासे दस हजारगुना, मोतियोंकी मालासे लाखगुना, पद्माक्षसे दस लाखगुना और सुवर्णके बने हुए मनकोंसे गणना करनेपर कोटिगुना अधिक फल बताया गया है। कुशकी गाँठसे तथा रुद्राक्षसे गणना करनेपर अनन्तगुने फलकी प्राप्ति होती है॥ ३४—३६ ॥

त्रिंशदक्षैः कृता माला धनदा जपकर्मणि।
सप्तविंशतिसंख्यातैरक्षैः पुष्टिप्रदा भवेत्॥ ३७

पञ्चविंशतिसंख्यातैः कृता मुक्तिं प्रयच्छति।
अक्षैस्तु पञ्चदशभिरभिचारफलप्रदा॥ ३८

तीस रुद्राक्षके दानोंसे बनायी गयी माला जप-कर्ममें धन देनेवाली होती है। सत्ताईस दानोंकी माला पुष्टिदायिनी और पचीस दानोंकी माला मुक्तिदायिनी होती है, पंद्रह रुद्राक्षोंकी बनी हुई माला अभिचारकर्ममें फलदायक होती है॥ ३७-३८ ॥

अंगुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्ज्जनीं शत्रुनाशिनीम्।
मध्यमां धनदां शांतिं करोत्येषा ह्यनामिका॥ ३९

अष्टोत्तरशतं माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा।
शतसंख्योत्तमा माला पञ्चाशद्भिस्तु मध्यमा॥ ४०

चतुःपञ्चाशदक्षैस्तु हृच्छ्रेष्ठा हि प्रकीर्तिता।
इत्येवं मालया कुर्याज्जपं कस्मै न दर्शयेत्॥ ४१

जपकर्ममें अँगूठेको मोक्षदायक समझना चाहिये और तर्जनीको शत्रुनाशक। मध्यमा धन देती है और अनामिका शान्ति प्रदान करती है। एक सौ आठ दानोंकी माला उत्तमोत्तम मानी गयी है। सौ दानोंकी माला उत्तम और पचास दानोंकी माला मध्यम होती है। चौवन दानोंकी माला मनोहारिणी एवं श्रेष्ठ कही गयी है। इस तरहकी मालासे जप करे। वह जप किसीको दिखाये नहीं॥ ३९—४१ ॥

कनिष्ठा क्षरणी प्रोक्ता जपकर्मणि शोभना।
अंगुष्ठेन जपेज्जप्यमन्यैरंगुलिभिः सह॥ ४२

अंगुष्ठेन विना जप्यं कृतं तदफलं यतः।

कनिष्ठिका अंगुलि अक्षरणी (जपके फलको क्षरित—नष्ट न करनेवाली) मानी गयी है; इसलिये जपकर्ममें शुभ है। दूसरी अंगुलियोंके साथ अंगुष्ठद्वारा जप करना चाहिये; क्योंकि अंगुष्ठके बिना किया हुआ जप निष्फल होता है॥ ४२१/२॥

गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं विदुः॥ ४३

पुण्यारण्ये तथारामे सहस्रगुणमुच्यते।
अयुतं पर्वते पुण्ये नद्यां लक्षमुदाहृतम्॥ ४४

कोटिं देवालये प्राहुरनन्तं मम सन्निधौ।

घरमें किये हुए जपको समान या एकगुना समझना चाहिये। गोशालामें उसका फल सौगुना हो जाता है, पवित्र वन या उद्यानमें किये हुए जपका फल सहस्रगुना बताया जाता है। पवित्र पर्वतपर दस हजारगुना, नदीके तटपर लाखगुना, देवालयमें कोटिगुना और मेरे निकट किये हुए जपको अनन्तगुना कहा गया है॥ ४३-४४१/२॥

सूर्यस्याग्नेर्गुरोरिन्दोर्दीपस्य च जलस्य च॥ ४५

विप्राणां च गवां चैव सन्निधौ शस्यते जपः।

सूर्य, अग्नि, गुरु, चन्द्रमा, दीपक, जल, ब्राह्मण और गौओंके समीप किया हुआ जप श्रेष्ठ होता है॥ ४५१/२॥

तत्पूर्वाभिमुखं वश्यं दक्षिणं चाभिचारिकम्॥ ४६

पश्चिमं धनदं विद्यादौत्तरं शांतिदं भवेत्।

पूर्वाभिमुख किया हुआ जप वशीकरणमें और दक्षिणाभिमुख जप अभिचारकर्ममें सफलता प्रदान करनेवाला है। पश्चिमाभिमुख जपको धनदायक जानना चाहिये और उत्तराभिमुख जप शान्तिदायक होता है॥ ४६१/२॥

सूर्य्याग्निविप्रदेवानां गुरूणामपि सन्निधौ॥ ४७

अन्येषां च प्रसक्तानां मन्त्रं न विमुखो जपेत्।
उष्णीषी कंचुकी नग्नो मुक्तकेशो गलावृतः॥ ४८

अपवित्रकरोऽशुद्धो विलपन्न जपेत् क्वचित्।

सूर्य, अग्नि, ब्राह्मण, देवता तथा अन्य श्रेष्ठ पुरुषोंके समीप उनकी ओर पीठ करके जप नहीं करना चाहिये, सिरपर पगड़ी रखकर, कुर्ता पहनकर, नंगा होकर, बाल खोलकर, गलेमें कपड़ा लपेटकर, अशुद्ध हाथ लेकर, सम्पूर्ण शरीरसे अशुद्ध रहकर तथा विलापपूर्वक कभी जप नहीं करना चाहिये॥ ४७-४८१/२॥

क्रोधं मदं क्षुतं त्रीणि निष्ठीवनविजृंभणे॥ ४९

दर्शनं च श्वनीचानां वर्जयेज्जपकर्मणि।
आचमेत्संभवे तेषां स्मरेद्वा मां त्वया सह॥ ५०

ज्योतींषि च प्रपश्येद्वा कुर्याद् वा प्राणसंयमम्।

जप करते समय क्रोध, मद, छींकना, थूकना, जँभाई लेना तथा कुत्तों और नीच पुरुषोंकी ओर देखना वर्जित है। यदि कभी वैसा सम्भव हो जाय तो आचमन करे अथवा तुम्हारे साथ मेरा (पार्वतीसहित शिवका) स्मरण करे या ग्रह-नक्षत्रोंका दर्शन करे अथवा प्राणायाम कर ले॥ ४९-५०१/२॥

अनासनः शयानो वा गच्छन्नुत्थित एव वा॥ ५१

रथ्यायामशिवे स्थाने न जपेत्तिमिरान्तरे।
प्रसार्य्य न जपेत्पादौ कुक्कुटासन एव वा॥ ५२

बिना आसनके बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे। गलीमें या सड़कपर, अपवित्र स्थानमें तथा अँधेरेमें भी जप न करे। दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसनसे बैठकर, सवारी या

यानशय्याधिरूढो वा चिन्ताव्याकुलितोऽथवा।
शक्तश्चेत्सर्वमेवैतदशक्तः शक्तितो जपेत्॥ ५३

खाटपर चढ़कर अथवा चिन्तासे व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमोंका पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे॥ ५१—५३॥

किमत्र बहुनोक्तेन समासेन वचः शृणु।
सदाचारो जपन् शुद्धं ध्यायन्भद्रं समश्नुते॥ ५४

आचारः परमो धर्म आचारः परमं धनम्।
आचारः परमा विद्या आचारः परमा गतिः॥ ५५

आचारहीनः पुरुषो लोके भवति निन्दितः।
परत्र च सुखी न स्यात्तस्मादाचारवान्भवेत्॥ ५६

इस विषयमें बहुत कहनेसे क्या लाभ? संक्षेपसे मेरी यह बात सुनो। सदाचारी मनुष्य शुद्धभावसे जप और ध्यान करके कल्याणका भागी होता है। आचार परम धर्म है, आचार उत्तम धन है, आचार श्रेष्ठ विद्या है और आचार ही परम गति है। आचारहीन पुरुष संसारमें निन्दित होता है और परलोकमें भी सुख नहीं पाता। इसलिये सबको आचारवान् होना चाहिये॥ ५४—५६॥

यस्य यद्विहितं कर्म वेदे शास्त्रे च वैदिकैः।
तस्य तेन समाचारः सदाचारो न चेतरः॥ ५७

सद्भिराचरितत्वाच्च सदाचारः स उच्यते।
सदाचारस्य तस्याहुरास्तिक्यं मूलकारणम्॥ ५८

वेदज्ञ विद्वानोंने वेद-शास्त्रके कथनानुसार जिस वर्णके लिये जो कर्म विहित बताया है, उस वर्णके पुरुषको उसी कर्मका सम्यक् आचरण करना चाहिये। वही उसका सदाचार है, दूसरा नहीं। सत्पुरुषोंने उसका आचरण किया है; इसीलिये वह सदाचार कहलाता है। उस सदाचारका भी मूल कारण आस्तिकता है॥ ५७-५८॥

आस्तिकश्चेत्प्रमादाद्यैः सदाचारादविच्युतः।
न दुष्यति नरो नित्यं तस्मादास्तिकतां व्रजेत्॥ ५९

यथेहास्ति सुखं दुःखं सुकृतैर्दुष्कृतैरपि।
तथा परत्र चास्तीति मतिरास्तिक्यमुच्यते॥ ६०

यदि मनुष्य आस्तिक हो तो प्रमाद आदिके कारण सदाचारसे कभी भ्रष्ट हो जानेपर भी दूषित नहीं होता। अतः सदा आस्तिकताका आश्रय लेना चाहिये। जैसे इहलोकमें सत्कर्म करनेसे सुख और दुष्कर्म करनेसे दुःख होता है, उसी तरह परलोकमें भी होता है—इस विश्वासको आस्तिकता कहते हैं॥ ५९-६०॥

रहस्यमन्यद्वक्ष्यामि गोपनीयमिदं प्रिये।
न वाच्यं यस्य कस्यापि नास्तिकस्याथ वा पशोः॥ ६१

हे प्रिये! मैं तुमसे एक और रहस्यमय बात कहता हूँ, इसे [सदा] गुप्त रखना चाहिये। जिस किसी भी नास्तिक अथवा पशुतुल्य प्राणीको इसे नहीं बताना॥ ६१॥

सदाचारविहीनस्य पतितस्यान्त्यजस्य च।
पञ्चाक्षरात्परं नास्ति परित्राणं कलौ युगे॥ ६२

गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्वेच्छया कर्म कुर्वतः।
अशुचेर्वा शुचेर्वापि मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥ ६३

सदाचारसे हीन, पतित और अन्त्यजका उद्धार करनेके लिये कलियुगमें पंचाक्षर-मन्त्रसे बढ़कर दूसरा कोई उपाय नहीं है। चलते-फिरते, खड़े होते अथवा स्वेच्छानुसार कर्म करते हुए अपवित्र या पवित्र पुरुषके जप करनेपर भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता॥ ६२-६३॥

अनाचारवतां पुंसामविशुद्धषडध्वनाम्।
अनादिष्टोऽपि गुरुणा मन्त्रोऽयं न च निष्फलः॥ ६४

आचारहीन तथा षडध्वशोधनसे रहित पुरुषोंके लिये और जिसे गुरुसे मन्त्रकी दीक्षा प्राप्त नहीं हुई उनके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता है॥ ६४॥

अन्त्यजस्यापि मूर्खस्य मूढस्य पतितस्य च।
निर्मर्यादस्य नीचस्य मन्त्रोऽयं न च निष्फलः ॥ ६५

सर्वावस्थां गतस्यापि मयि भक्तिमतः परम्।
सिध्यत्येव न संदेहो नापरस्य तु कस्यचित् ॥ ६६

न लग्नतिथिनक्षत्रवारयोगादयः प्रिये।
अस्यात्यन्तमवेक्ष्याः स्युर्नैष सुप्तः सदोदितः ॥ ६७

न कदाचिन्न कस्यापि रिपुरेष महामनुः।
सुसिद्धो वापि सिद्धो वा साध्यो वापि भविष्यति ॥ ६८

सिद्धेन गुरुणादिष्टः सुसिद्ध इति कथ्यते।
असिद्धेनापि वा दत्तः सिद्धसाध्यस्तु केवलः ॥ ६९

असाधितः साधितो वा सिध्यत्येव न संशयः।
श्रद्धातिशययुक्तस्य मयि मन्त्रे तथा गुरौ ॥ ७०

तस्मान्मन्त्रान्तरांस्त्यक्त्वा सापायानधिकारतः।
आश्रयेत्परमां विद्यां साक्षात्पञ्चाक्षरीं बुधः ॥ ७१

मन्त्रान्तरेषु सिद्धेषु मन्त्र एष न सिध्यति।
सिद्धे त्वस्मिन्महामन्त्रे ते च सिद्धा भवन्त्युत ॥ ७२

यथा देवेष्वलब्धोऽस्मि लब्धेष्वपि महेश्वरि।
मयि लब्धे तु ते लब्धा मन्त्रेष्वेषु समो विधिः ॥ ७३

ये दोषाः सर्वमन्त्राणां न तेऽस्मिन् संभवन्त्यपि।
अस्य मन्त्रस्य जात्यादीननपेक्ष्य प्रवर्तनात् ॥ ७४

तथापि नैव क्षुद्रेषु फलेषु प्रतियोगिषु।
सहसा विनियुञ्जीत तस्मादेष महाबलः ॥ ७५

उपमन्युरुवाच

एवं साक्षान्महादेव्यै महादेवेन शूलिना।
हिताय जगतामुक्तः पञ्चाक्षरविधिर्यथा ॥ ७६

अन्त्यज, मूर्ख, मूढ़, पतित, मर्यादारहित और नीचके लिये भी यह मन्त्र निष्फल नहीं होता। किसी भी अवस्थामें पड़ा हुआ मनुष्य भी, यदि मुझमें उत्तम भक्तिभाव रखता है, तो उसके लिये यह मन्त्र निःसंदेह सिद्ध होगा ही, किंतु दूसरे किसीके लिये वह सिद्ध नहीं हो सकता ॥ ६५-६६ ॥

प्रिये! इस मन्त्रके लिये लग्न, तिथि, नक्षत्र, वार और योग आदिका अधिक विचार अपेक्षित नहीं है। यह मन्त्र कभी सुप्त नहीं होता, सदा जाग्रत् ही रहता है। यह महामन्त्र कभी किसीका शत्रु नहीं होता। यह सदा सुसिद्ध, सिद्ध अथवा साध्य ही रहता है ॥ ६७-६८ ॥

सिद्ध गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मन्त्र सुसिद्ध कहलाता है। असिद्ध गुरुका भी दिया हुआ मन्त्र सिद्ध कहा गया है। जो केवल परम्परासे प्राप्त हुआ है, किसी गुरुके उपदेशसे नहीं मिला है, वह मन्त्र साध्य होता है। जो मुझमें, मन्त्रमें तथा गुरुमें अतिशय श्रद्धा रखनेवाला है, उसको मिला हुआ मन्त्र किसी गुरुके द्वारा साधित हो या असाधित, सिद्ध होकर ही रहता है, इसमें संशय नहीं है ॥ ६९-७० ॥

इसलिये अधिकारकी दृष्टिसे विघ्नयुक्त होनेवाले दूसरे मन्त्रोंको त्यागकर विद्वान् पुरुष साक्षात् परमा विद्या पंचाक्षरीका आश्रय ले। दूसरे मन्त्रोंके सिद्ध हो जानेसे ही यह मन्त्र सिद्ध नहीं होता। परंतु इस महामन्त्रके सिद्ध होनेपर वे दूसरे मन्त्र अवश्य सिद्ध हो जाते हैं ॥ ७१-७२ ॥

महेश्वरि! जैसे अन्य देवताओंके प्राप्त होनेपर भी मैं नहीं प्राप्त होता; परंतु मेरे प्राप्त होनेपर वे सब देवता प्राप्त हो जाते हैं, यही न्याय इन सब मन्त्रोंके लिये भी है। सब मन्त्रोंके जो दोष हैं, वे इस मन्त्रमें सम्भव नहीं हैं; क्योंकि यह मन्त्र जाति आदिकी अपेक्षा न रखकर प्रवृत्त होता है। तथापि छोटे-छोटे तुच्छ फलोंके लिये सहसा इस मन्त्रका विनियोग नहीं करना चाहिये; क्योंकि यह मन्त्र महान् फल देनेवाला है ॥ ७३—७५ ॥

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इस प्रकार त्रिशूलधारी महादेवजीने तीनों लोकोंके हितके लिये साक्षात् महादेवी पार्वतीसे इस पंचाक्षर-मन्त्रकी

य इदं कीर्तयेद्भक्त्या शृणुयाद्वा समाहितः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमां गतिम्॥ ७७

विधि कही थी, जो एकाग्रचित्त हो भक्ति-भावसे इस प्रसंगको सुनता या सुनाता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो परमगतिको प्राप्त होता है॥ ७६-७७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे पंचाक्षरमहिमवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें पंचाक्षर-महिमवर्णन नामक चौदहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १४॥

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

त्रिविध दीक्षाका निरूपण, शक्तिपातकी आवश्यकता तथा उसके लक्षणोंका वर्णन, गुरुका महत्त्व, ज्ञानी गुरुसे ही मोक्षकी प्राप्ति तथा गुरुके द्वारा शिष्यकी परीक्षा

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन्मन्त्रमाहात्म्यं भवता कथितं प्रभो।
तत्प्रयोगविधानं च साक्षाच्छ्रुतिसमं यथा॥ १

इदानीं श्रोतुमिच्छामि शिवसंस्कारमुत्तमम्।
मन्त्रसंग्रहणे किञ्चित्सूचितं न तु विस्तृतम्॥ २

श्रीकृष्ण बोले—भगवन्! आपने मन्त्रका माहात्म्य तथा उसके प्रयोगका विधान बताया, जो साक्षात् वेदके तुल्य है। अब मैं उत्तम शिव-संस्कारकी विधि सुनना चाहता हूँ, जिसे मन्त्र-ग्रहणके प्रकरणमें आपने कुछ सूचित किया था, पर उसका विस्तृत वर्णन नहीं किया था॥ १-२॥

उपमन्युरुवाच

हन्त ते कथयिष्यामि सर्वपापविशोधनम्।
संस्कारं परमं पुण्यं शिवेन परिभाषितम्॥ ३

उपमन्युने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें शिवद्वारा कथित परम पवित्र संस्कारका विधान बता रहा हूँ, जो समस्त पापोंका शोधन करनेवाला है॥ ३॥

सम्यक् कृताधिकारः स्यात्पूजादिषु नरो यतः।
संस्कारः कथ्यते तेन षडध्वपरिशोधनम्॥ ४

मनुष्य जिसके प्रभावसे पूजा आदिमें उत्तम अधिकार प्राप्त कर लेता है, उस षडध्वशोधन कर्मको संस्कार कहते हैं। संस्कार अर्थात् शुद्धि करनेसे ही उसका नाम संस्कार है॥ ४॥

दीयते येन विज्ञानं क्षीयते पाशबन्धनम्।
तस्मात्संस्कार एवायं दीक्षेत्यपि च कथ्यते॥ ५

यह विज्ञान देता है और पाशबन्धनको क्षीण करता है। इसलिये इस संस्कारको ही दीक्षा भी कहते हैं॥ ५॥

शांभवी चैव शाक्ती च मांत्री चैव शिवागमे।
दीक्षोपदिश्यते त्रेधा शिवेन परमात्मना॥ ६

शिव-शास्त्रमें परमात्मा शिवने 'शाम्भवी', 'शाक्ती' और 'मान्त्री' तीन प्रकारकी दीक्षाका उपदेश किया है॥ ६॥

गुरोरालोकमात्रेण स्पर्शात्संभाषणादपि।
सद्यः संज्ञा भवेज्जन्तोः पाशोपक्षयकारिणी॥ ७

सा दीक्षा शांभवी प्रोक्ता सा पुनर्भिद्यते द्विधा।
तीव्रा तीव्रतरा चेति पाशोपक्षयभेदतः॥ ८

यया स्यान्निर्वृतिः सद्यः सैव तीव्रतरा मता।
तीव्रा तु जीवतोऽत्यन्तं पुंसः पापविशोधिका॥ ९

गुरुके दृष्टिपातमात्रसे, स्पर्शसे तथा सम्भाषणसे भी जीवको जो तत्काल पाशोंका नाश करनेवाली संज्ञा अर्थात् सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है, वह शाम्भवी दीक्षा कहलाती है। उस दीक्षाके भी दो भेद हैं—तीव्रा और तीव्रतरा। पाशोंके क्षीण होनेमें जो शीघ्रता या मन्दता होती है, उसीके भेदसे ये दो भेद हुए हैं। जिस दीक्षासे तत्काल सिद्धि या शान्ति प्राप्त होती है, वही तीव्रतरा मानी गयी है। जीवित पुरुषके पापका अत्यन्त शोधन करनेवाली जो दीक्षा है, उसे तीव्रा कहा गया है॥ ७—९॥

शाक्ती ज्ञानवती दीक्षा शिष्यदेहं प्रविश्य तु।
गुरुणा योगमार्गेण क्रियते ज्ञानचक्षुषा॥ १०

मान्त्री क्रियावती दीक्षा कुंडमंडलपूर्विका।
मंदमंदतरोद्देशात्कर्तव्या गुरुणा बहिः॥ ११

शक्तिपातानुसारेण शिष्योऽनुग्रहमर्हति।
शैवधर्मानुसारस्य तन्मूलत्वात्समासतः॥ १२

यत्र शक्तिर्न पतिता तत्र शुद्धिर्न जायते।
न विद्या न शिवाचारो न मुक्तिर्न च सिद्धयः॥ १३

तस्मात् लिङ्गानि संवीक्ष्य शक्तिपातस्य भूयसः।
ज्ञानेन क्रियया वाथ गुरुः शिष्यं विशोधयेत्॥ १४

योऽन्यथा कुरुते मोहात् स विनश्यति दुर्मतिः।
तस्मात्सर्वप्रकारेण गुरुः शिष्यं परीक्षयेत्॥ १५

लक्षणं शक्तिपातस्य प्रबोधानन्दसम्भवः।
सा यस्मात्परमा शक्तिः प्रबोधानन्दरूपिणी॥ १६

आनन्दबोधयोर्लिङ्गमन्तःकरणविक्रियाः।
यथा स्यात्कम्परोमाञ्चस्वरनेत्राङ्गविक्रियाः॥ १७

शिष्योऽपि लक्षणैरेभिः कुर्याद्गुरुपरीक्षणम्।
तत्सम्पर्कैः शिवार्चादौ सङ्गतैर्वाथ तद्गतैः॥ १८

शिष्यस्तु शिक्षणीयत्वाद्गुरोर्गौरवकारणात्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोर्गौरवमाचरेत्॥ १९

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः स गुरुः स्मृतः।
गुरुर्वा शिव एवाथ विद्याकारेण संस्थितः॥ २०

यथा शिवस्तथा विद्या यथा विद्या तथा गुरुः।
शिवविद्या गुरूणां च पूजया सदृशं फलम्॥ २१

गुरु योगमार्गसे शिष्यके शरीरमें प्रवेश करके ज्ञानदृष्टिसे जो ज्ञानवती दीक्षा देते हैं, वह शाक्ती कही गयी है॥ १०॥

क्रियावती दीक्षाको मान्त्री दीक्षा कहते हैं। इसमें पहले होमकुण्ड और यज्ञमण्डपका निर्माण किया जाता है। फिर गुरु बाहरसे मन्द या मन्दतर उद्देश्यको लेकर शिष्यका संस्कार करते हैं। शक्तिपातके अनुसार शिष्य गुरुके अनुग्रहका भाजन होता है। शैव-धर्मका अनुसरण शक्तिपात-मूलक है; अतः संक्षेपसे उसके विषयमें निवेदन किया जाता है॥ ११-१२॥

जिस शिष्यमें गुरुकी शक्तिका पात नहीं हुआ, उसमें शुद्धि नहीं आती तथा उसमें न तो विद्या, न शिवाचार, न मुक्ति और न सिद्धियाँ ही होती हैं; अतः प्रचुर शक्तिपातके लक्षणोंको देखकर गुरु ज्ञान अथवा क्रियाके द्वारा शिष्यका शोधन करे॥ १३-१४॥

जो मोहवश इसके विपरीत आचरण करता है, वह दुर्बुद्धि नष्ट हो जाता है; अतः गुरु सब प्रकारसे शिष्यका परीक्षण करे। उत्कृष्ट बोध और आनन्दकी प्राप्ति ही शक्तिपातका लक्षण है; क्योंकि वह परमाशक्ति प्रबोधानन्दरूपिणी ही है। आनन्द और बोधका लक्षण है अन्तःकरणमें (सात्त्विक) विकार। जब अन्तःकरण द्रवित होता है, तब बाह्य शरीरमें कम्प, रोमांच, स्वरविकार,[1] नेत्रविकार[2] और अंगविकार[3] प्रकट होते हैं॥ १५—१७॥

शिष्य भी शिवपूजन आदिमें गुरुका सम्पर्क प्राप्त करके अथवा उनके साथ रह करके उनमें प्रकट होनेवाले इन लक्षणोंसे गुरुकी परीक्षा करे। शिष्य गुरुका शिक्षणीय होता है और उसका गुरुके प्रति गौरव होता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके शिष्य ऐसा आचरण करे, जो गुरुके गौरवके अनुरूप हो॥ १८-१९॥

जो गुरु है, वह शिव कहा गया है और जो शिव है, वह गुरु माना गया है। विद्याके आकारमें शिव ही गुरु बनकर विराजमान हैं। जैसे शिव हैं, वैसी विद्या है। जैसी विद्या है, वैसे गुरु हैं। शिव, विद्या और गुरुके पूजनसे समान फल मिलता है॥ २०-२१॥

१. कण्ठसे गद्गदवाणीका प्रकट होना। २. नेत्रोंसे अश्रुपात होना। ३. शरीरमें स्तम्भ (जड़ता) तथा स्वेद आदिका उदय होना।

सर्वदेवात्मकश्चासौ सर्वमन्त्रमयो गुरुः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तस्याज्ञां शिरसा वहेत्॥ २२

शिव सर्वदेवात्मक हैं और गुरु सर्वमन्त्रमय। अतः सम्पूर्ण यत्नसे गुरुकी आज्ञाको शिरोधार्य करना चाहिये॥ २२॥

श्रेयोऽर्थी यदि गुर्वाज्ञां मनसापि न लंघयेत्।
गुर्वाज्ञापालको यस्मात् ज्ञानसंपत्तिमश्नुते॥ २३

यदि शिष्य [अपने] कल्याणका इच्छुक है, तो वह मनसे भी गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन न करे; क्योंकि गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला ज्ञानरूपी सम्पदा प्राप्त करता है॥ २३॥

गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् भुञ्जन्नान्यत्कर्म समाचरेत्।
समक्षं यदि कुर्वीत सर्वं चानुज्ञया गुरोः॥ २४

गुरोर्गृहे समक्षं वा न यथेष्टासनो भवेत्।
गुरुर्देवो यतः साक्षात्तद्गृहं देवमन्दिरम्॥ २५

चलते, बैठते, सोते तथा भोजन करते समय अन्य कर्म नहीं करना चाहिये। यदि गुरुके सामने कर्म करे तो सब कुछ उनकी आज्ञासे करे। गुरुके घरमें अथवा उनके सामने अपनी इच्छाके अनुरूप आसनपर न बैठे, क्योंकि गुरु साक्षात् देवता होते हैं और उनका घर देवमन्दिर है॥ २४-२५॥

पापिनां च यथा सङ्गात्तत्पापात्पतितो भवेत्।
यथेह वह्निसम्पर्कात् मलं त्यजति काञ्चनम्।
तथैव गुरुसम्पर्कात् पापं त्यजति मानवः॥ २६

यथा वह्निसमीपस्थो घृतकुम्भो विलीयते।
तथा पापं विलीयेत ह्याचार्यस्य समीपतः॥ २७

यथा प्रज्वलितो वह्निः शुष्कमार्द्रं च निर्दहेत्।
तथायमपि सन्तुष्टो गुरुः पापं क्षणाद्दहेत्॥ २८

जैसे पापियोंके संगके कारण उनके पापसे मनुष्य पतित हो जाता है, जैसे अग्निके सम्पर्कसे सोना मल (गन्दगी) छोड़ देता है, वैसे ही गुरुके सम्पर्कसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है। जैसे अग्निके पास स्थित घड़ेमें रखा हुआ घृत पिघल जाता है, वैसे ही आचार्यके सम्पर्कसे शिष्यका पाप गल जाता है। जैसे प्रज्वलित अग्नि सूखे तथा गीले पदार्थको जला डालती है, वैसे ही प्रसन्न हुए ये गुरु भी क्षणभरमें पापको जला देते हैं॥ २६—२८॥

मनसा कर्मणा वाचा गुरोः क्रोधं न कारयेत्॥ २९

तस्य क्रोधेन दह्यन्ते ह्यायुः श्रीज्ञानसत्क्रियाः।
तत्क्रोधकारिणो ये स्युस्तेषां यज्ञाश्च निष्फलाः॥ ३०

यमाश्च नियमाश्चैव नात्र कार्या विचारणा।

मन, वचन तथा कर्मसे गुरुको कुपित नहीं करना चाहिये, उनके क्रोधसे आयु, श्री, ज्ञान तथा सत्कर्म दग्ध हो जाते हैं, जो उन्हें कुपित करते हैं, उनके यज्ञ, यम तथा नियम निष्फल हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं करना चाहिये॥ २९-३०॥

गुरोर्विरुद्धं यद्वाक्यं न वदेज्जातुचिन्नरः॥ ३१
वदेद्यदि महामोहाद्रौरवं नरकं व्रजेत्।

मनुष्यको चाहिये कि जो वचन गुरुके विरुद्ध हो, उसे कभी न बोले। यदि वह महामोहके कारण बोलता है, तो रौरव नरकमें पड़ता है॥ ३१ १/२॥

मनसा कर्मणा वाचा गुरुमुद्दिश्य यत्नतः॥ ३२

श्रेयोऽर्थी चेन्नरो धीमान्न मिथ्याचारमाचरेत्।
गुरोर्हितं प्रियं कुर्यादादिष्टो वा न वा सदा॥ ३३

यदि मनुष्य अपना कल्याण चाहनेवाला और बुद्धिमान् है तो वह गुरुके प्रति मन, वाणी और क्रियाद्वारा कभी मिथ्याचार—कपटपूर्ण बर्ताव न करे। गुरु आज्ञा दें या न दें, शिष्य सदा उनका हित और प्रिय करे॥ ३२-३३॥

असमक्षं समक्षं वा तस्य कार्यं समाचरेत्।
इत्थमाचारवान्भक्तो नित्यमुद्युक्तमानसः ॥ ३४

गुरुप्रियकरः शिष्यः शैवधर्मांस्ततोऽर्हति।

उनके सामने और पीठ-पीछे भी उनका कार्य करता रहे। ऐसे आचारसे युक्त गुरुभक्त और सदा मनमें उत्साह रखनेवाला जो गुरुका प्रिय कार्य करनेवाला शिष्य है, वही शैव धर्मोंके उपदेशका अधिकारी है॥ ३४१/२॥

गुरुश्चेद्गुणवान् प्राज्ञः परमानन्दभासकः ॥ ३५
तत्त्वविच्छिवसंसक्तो मुक्तिदो न तु चापरः।
संवित्सञ्जननं तत्त्वं परमानन्दसम्भवम् ॥ ३६
तत्तत्त्वं विदितं येन स एवानन्ददर्शकः।
न पुनर्नाममात्रेण संविदारहितस्तु यः ॥ ३७

यदि गुरु गुणवान्, विद्वान्, परमानन्दका प्रकाशक, तत्त्ववेत्ता और शिवभक्त है तो वही मुक्ति देनेवाला है, दूसरा नहीं। ज्ञान उत्पन्न करनेवाला जो परमानन्दजनित तत्त्व है, उसे जिसने जान लिया है, वही आनन्दका साक्षात्कार करा सकता है। ज्ञानरहित नाममात्रका गुरु ऐसा नहीं कर सकता॥ ३५—३७॥

अन्योऽन्यं तारयेन्नौका किं शिला तारयेच्छिलाम्।
एतस्य नाममात्रेण मुक्तिर्वै नाममात्रिका ॥ ३८
यैः पुनर्विदितं तत्त्वं ते मुक्ता मोचयन्त्यपि।
तत्त्वहीने कुतो बोधः कुतो ह्यात्मपरिग्रहः ॥ ३९

नौकाएँ एक-दूसरीको पार लगा सकती हैं, किंतु क्या कोई शिला दूसरी शिलाको तार सकती है? नाममात्रके गुरुसे नाममात्रकी ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। जिन्हें तत्त्वका ज्ञान है, वे ही स्वयं मुक्त होकर दूसरोंको भी मुक्त करते हैं। तत्त्वहीनको कैसे बोध होगा और बोधके विना कैसे 'आत्मा' का अनुभव होगा?॥ ३८-३९॥

परिग्रहविनिर्मुक्तः पशुरित्यभिधीयते।
पशुभिः प्रेरितश्चापि पशुत्वं नातिवर्तते ॥ ४०
तस्मात्तत्त्वविदेवेह मुक्तो मोचक इष्यते।

जो आत्मानुभवसे शून्य है, वह 'पशु' कहलाता है। पशुकी प्रेरणासे कोई पशुत्वको नहीं लाँघ सकता; अतः तत्त्वज्ञ पुरुष ही 'मुक्त' और 'मोचक' हो सकता है, अज्ञ नहीं॥ ४०१/२॥

सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वशास्त्रविदप्ययम् ॥ ४१
सर्वोपायविधिज्ञोऽपि तत्त्वहीनस्तु निष्फलः।

समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता तथा सब प्रकारके उपाय-विधानका जानकार होनेपर भी जो तत्त्वज्ञानसे हीन है, उसका जीवन निष्फल है॥ ४११/२॥

यस्यानुभवपर्यन्ता बुद्धिस्तत्त्वे प्रवर्तते ॥ ४२
तस्यावलोकनाद्यैश्च परानन्दोऽभिजायते।
तस्माद्यस्यैव संपर्कात्प्रबोधानंदसंभवः ॥ ४३
गुरुं तमेव वृणुयान्नापरं मतिमान्नरः।

जिस पुरुषकी अनुभवपर्यन्त बुद्धि तत्त्वके अनुसंधानमें प्रवृत्त होती है, उसके दर्शन, स्पर्श आदिसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है। अतः जिसके सम्पर्कसे ही उत्कृष्ट बोधस्वरूप आनन्दकी प्राप्ति सम्भव हो, बुद्धिमान् पुरुष उसीको अपना गुरु चुने, दूसरेको नहीं॥ ४२-४३१/२॥

स शिष्यैर्विनयाचारचतुरैरुचितो गुरुः ॥ ४४
यावद्विज्ञायते तावत्सेवनीयो मुमुक्षुभिः।
ज्ञाते तस्मिन्स्थिरा भक्तिर्यावत्तत्त्वं समाश्रयेत् ॥ ४५

योग्य गुरुका जबतक अच्छी तरह ज्ञान न हो जाय, तबतक विनयाचार-चतुर मुमुक्षु शिष्योंको उनकी निरन्तर सेवा करनी चाहिये। उनका अच्छी तरह ज्ञान—सम्यक् परिचय हो जानेपर उनमें सुस्थिर भक्ति करे। जबतक तत्त्वका बोध न प्राप्त हो जाय, तबतक निरन्तर गुरुसेवनमें लगा रहे॥ ४४-४५॥

न तु तत्त्वं त्यजेज्जातु नोपेक्षेत कथंचन।
यत्रानंदः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते॥ ४६
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत्।

तत्त्वको न तो कभी छोड़े और न किसी तरह भी उसकी उपेक्षा ही करे। जिसके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़ेसे भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले॥ ४६१/२॥

गुरुमन्यं प्रपन्नेऽपि नावमन्येत पौर्विकम्।
गुरोर्भ्रातॄंस्तथा पुत्रान् बोधकान् प्रेरकानपि॥ ४७

दूसरे गुरुके शरणागत होनेपर भी पूर्वगुरुका, गुरुके भाइयोंका, उनके पुत्रोंका, उपदेशकोंका तथा प्रेरकोंका अपमान न करे॥ ४७॥

तत्रादावुपसङ्गम्य ब्राह्मणं वेदपारगम्।
गुरुमाराधयेत्प्राज्ञं शुभगं प्रियदर्शनम्॥ ४८
सर्वाभयप्रदातारं करुणाक्रान्तमानसम्।
तोषयेत्तं प्रयत्नेन मनसा कर्मणा गिरा॥ ४९

सर्वप्रथम ब्राह्मण, वेदमें पारंगत, प्रज्ञासम्पन्न, सुन्दर, प्रियदर्शन, सब प्रकारसे अभय प्रदान करनेवाले तथा करुणामय चित्तवाले गुरुके पास जाकर उनकी आराधना करनी चाहिये और मन वचन कर्मसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें प्रसन्न करना चाहिये॥ ४८-४९॥

तावदाराधयेच्छिष्यः प्रसन्नोऽसौ भवेद्यथा।
तस्मिन् प्रसन्ने शिष्यस्य सद्यः पापक्षयो भवेत्॥ ५०
तस्माद्धनानि रत्नानि क्षेत्राणि च गृहाणि च।
भूषणानि च वासांसि यानशय्यासनानि च॥ ५१
एतानि गुरवे दद्याद्भक्त्या वित्तानुसारतः।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत्परमां गतिम्॥ ५२

शिष्यको चाहिये कि तबतक उनकी आराधना करे, जबतक वे प्रसन्न न हो जायँ। उनके प्रसन्न हो जानेपर शीघ्र ही शिष्यके पापका नाश हो जाता है, अतः धन, रत्न, क्षेत्र, गृह, आभूषण, वस्त्र, वाहन, शय्या, आसन—यह सब भक्तिपूर्वक अपने धन-सामर्थ्यके अनुसार गुरुको प्रदान करना चाहिये। यदि शिष्य परमगति चाहता है, तो उसे धनकी कृपणता नहीं करनी चाहिये॥ ५०—५२॥

स एव जनको माता भर्ता बन्धुर्धनं सुखम्।
सखा मित्रं च यत्तस्मात्सर्वं तस्मै निवेदयेत्॥ ५३
निवेद्य पश्चात्स्वात्मानं सान्वयं सपरिग्रहम्।
समर्प्य सोदकं तस्मै नित्यं तद्वशगो भवेत्॥ ५४
यदा शिवाय स्वात्मानं दत्तवान् देशिकात्मने।
तदा शैवो भवेद्देही न ततोऽस्ति पुनर्भवः॥ ५५

वे ही पिता, माता, पति, बन्धु, धन, सुख, सखा तथा मित्र हैं, इसलिये उन्हें सब कुछ अर्पित कर देना चाहिये। इस प्रकार निवेदित करके बादमें परिवार तथा बन्धुजनोंसहित अपनेको भी संकल्पपूर्वक उन्हें समर्पित करके सदाके लिये उनके अधीन हो जाना चाहिये। जब मनुष्य शिवस्वरूप गुरुके निमित्त अपनेको समर्पित कर देता है, तब वह शैव हो जाता है और उसके बाद उसका पुनर्जन्म नहीं होता है॥ ५३—५५॥

गुरुश्च स्वाश्रितं शिष्यं वर्षमेकं परीक्षयेत्।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं द्विवर्षं च त्रिवर्षकम्॥ ५६

गुरुको भी चाहिये कि वह अपने आश्रित ब्राह्मण-जातीय शिष्यकी एक वर्षतक परीक्षा करे। क्षत्रिय शिष्यकी दो वर्ष और वैश्यकी तीन वर्षतक परीक्षा करे॥ ५६॥

प्राणद्रव्यप्रदानाद्यैरादेशैश्च समासमैः।
उत्तमांश्चाधमे कृत्वा नीचानुत्तमकर्मणि॥ ५७

प्राणोंको संकटमें डालकर सेवा करने और अधिक धन देने आदिका अनुकूल-प्रतिकूल आदेश देकर, उत्तम जातिवालोंको छोटे काममें लगाकर और छोटोंको उत्तम काममें नियुक्त करके उनके धैर्य और सहनशीलताकी परीक्षा करे॥ ५७॥

आक्रुष्टास्ताडिता वापि ये विषादं न यान्त्यपि।
ते योग्याः संयताः शुद्धाः शिवसंस्कारकर्मणि ॥ ५८

अहिंसका दयावन्तो नित्यमुद्युक्तचेतसः।
अमानिनो बुद्धिमन्तः त्यक्तस्पर्द्धाः प्रियंवदाः ॥ ५९

ऋजवो मृदवः स्वच्छा विनीताः स्थिरचेतसः।
शौचाचारसमायुक्ताः शिवभक्ता द्विजातयः ॥ ६०

एवं वृत्तसमोपेता वाङ्मनःकायकर्मभिः।
शोध्या बोध्या यथान्यायमिति शास्त्रेषु निश्चयः ॥ ६१

गुरुके तिरस्कार आदि करनेपर भी जो विषादको नहीं प्राप्त होते, वे ही संयमी, शुद्ध तथा शिव-संस्कार कर्मके योग्य हैं। जो किसीकी हिंसा नहीं करते, सबके प्रति दयालु होते हैं, सदा हृदयमें उत्साह रखकर सब कार्य करनेको उद्यत रहते हैं; अभिमानशून्य, बुद्धिमान् और स्पर्धारहित होकर प्रिय वचन बोलते हैं; सरल, कोमल, स्वच्छ, विनयशील, सुस्थिरचित्त, शौचाचारसे संयुक्त और शिवभक्त होते हैं, ऐसे आचार व्यवहारवाले द्विजातियोंको मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा यथोचित रीतिसे शुद्ध करके तत्त्वका बोध कराना चाहिये, यह शास्त्रोंका निर्णय है ॥ ५८—६१ ॥

नाधिकारः स्वतो नार्याः शिवसंस्कारकर्मणि।
नियोगाद्भर्तुरस्त्येव भक्तियुक्ता यदीश्वरे ॥ ६२

शिव-संस्कार कर्ममें नारीका स्वतः अधिकार नहीं है। यदि वह शिवभक्त हो तो पतिकी आज्ञासे ही उक्त संस्कारकी अधिकारिणी होती है ॥ ६२ ॥

तथैव भर्तृहीनाया पुत्रादेरभ्यनुज्ञया।
अधिकारो भवत्येव कन्यायाः पितुराज्ञया।
शूद्राणां मर्त्यजातीनां पतितानां विशेषतः ॥ ६३

तथा सङ्करजातीनां नाध्वशुद्धिर्विधीयते।
तेऽप्यकृत्रिमभावाश्चेच्छिवे परमकारणे ॥ ६४
पादोदकप्रदानाद्यैः कुर्युः पापविशोधनम्।

विधवा स्त्रीका पुत्र आदिकी अनुमतिसे और कन्याका पिताकी आज्ञासे शिव-संस्कारमें अधिकार होता है। शूद्रों, पतितों और वर्णसंकरोंके लिये षडध्वशोधन (शिव-संस्कार)-का विधान नहीं है। वे भी यदि परमकारण शिवमें स्वाभाविक अनुराग रखते हों तो शिवका चरणोदक लेकर अपने पापोंकी शुद्धि करें ॥ ६३-६४½ ॥

अत्रानुलोमजाता ये युक्ता एव द्विजातिषु ॥ ६५
तेषामध्वविशुद्ध्यादि कुर्यान्मातृकुलोचितम्।

द्विजातियोंमें जो वर्णसंकर उत्पन्न हुए हैं, उनकी अध्व-शुद्धि माताके कुलके अनुसार करना चाहिये ॥ ६५½ ॥

या तु कन्या स्वपित्राद्यैः शिवधर्मे नियोजिता ॥ ६६

स भक्ताय प्रदातव्या नापराय विरोधिने।
दत्ता चेत्प्रतिकूलाय प्रमादाद्बोधयेत्पतिम् ॥ ६७

अशक्ता तं परित्यज्य मनसा धर्ममाचरेत्।
यथा मुनिवरं त्यक्त्वा पतिमत्रिं पतिव्रता ॥ ६८

कृतकृत्याभवत्पूर्वं तपमाराध्य शङ्करम्।
यथा नारायणं देवं तपसाराध्य पांडवाः ॥ ६९

पतींल्लब्धवती धर्मे गुरुभिर्न नियोजिता।
अस्वातन्त्र्यकृतो दोषो नेहास्ति परमार्थतः ॥ ७०

शिवधर्मे नियुक्तायाः शिवशासनगौरवात्।

जो कन्या पिता आदिके द्वारा शिवधर्ममें नियुक्त की गयी हो, [पिता आदिको चाहिये कि वे] उसे शिवभक्त वरको ही प्रदान करें, किसी शिवविरोधीको नहीं। यदि असावधानीवश किसी प्रतिकूलको दे दी जाय, तो वह कन्या पतिको समझाये; यदि वह असमर्थ हो, तो उसे छोड़कर मनोयोगसे [एकाकिनी ही रहकर] शिवधर्मका आचरण करे; जैसे कि अपने पति मुनिवर अत्रिको छोड़कर पतिव्रता अनसूया तपस्यासे शंकरकी आराधना करके कृतकृत्य हुई और जैसे तपस्याके द्वारा भगवान् नारायणकी आराधना करके द्रौपदीने गुरुजनोंके द्वारा धर्मानुशासित होकर पतिरूपमें पाण्डवोंका वरण किया। शिवधर्मके आधारपर [इस प्रकारका] व्यवहार करनेवाली द्रौपदीको शिवजीके धर्मानुशासनके गौरववश वस्तुतः इस प्रसंगसे यथेच्छाचाररूप पाप भी नहीं लगा ॥ ६६—७०½ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन योऽपि कोऽपि शिवाश्रयः ॥ ७१
संस्कार्यो गुर्वधीनश्चेत्संस्क्रिया न प्रभिद्यते।

इस विषयमें अधिक क्या कहा जाय! जो कोई भी शिवजीका आश्रय ले ले और गुरुका अनुगत हो जाय [तो गुरुको चाहिये कि वे] उसको दीक्षा आदिसे संस्कारसम्पन्न करें, [यह अवश्य है कि अधिकारी भेदसे] संस्कारकी प्रक्रिया भिन्न हो जाती है ॥ ७११/२ ॥

गुरोरालोकनादेव स्पर्शात्संभाषणादपि ॥ ७२
यस्य सञ्जायते प्रज्ञा तस्य नास्ति पराजयः।
मनसा यस्तु संस्कारः क्रियते योगवर्त्मना ॥ ७३
स नेह कथितो गुह्यो गुरुवक्त्रैकगोचरः।
क्रियावान् यस्तु संस्कारः कुंडमंडपपूर्वकः।
स वक्ष्यते समासेन तस्य शक्यो न विस्तरः ॥ ७४

गुरुके द्वारा [कृपापूर्वक] देखने, छूने अथवा वार्तालाप करनेमात्रसे उस [साधक]-में निर्मल बुद्धिका उदय होता है और तब वह [नानाविध दोषोंसे] पराजित नहीं होता। यौगिक रीतिसे [शिष्यको] जो मानसी दीक्षा प्रदान की जाती है, वह विषय अतीव गोपनीय होनेके कारण गुरुमुखसे ही जाननेयोग्य है, अतएव यहाँ उसका वर्णन नहीं किया गया। कुण्ड-मण्डप आदिका निर्माण करके जिस दीक्षाप्रक्रियाका सम्पादन किया जाता है, उसीको यहाँ संक्षेपमें बताया जा रहा है, क्योंकि उसका विस्तृत वर्णन करना सम्भव नहीं है ॥ ७२—७४ ॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे दीक्षाविधाने गुरुमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें दीक्षाविधानमें गुरुमाहात्म्यवर्णन नामक पन्द्रहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ ॥ १५ ॥

अथ षोडशोऽध्यायः

समय-संस्कार या समयाचारकी दीक्षाकी विधि

उपमन्युरुवाच

पुण्येऽहनि शुचौ देशे बहुदोषविवर्जिते।
देशिकः प्रथमं कुर्यात्संस्कारं समयाह्वयम् ॥ १
परीक्ष्य भूमिं विधिवद् गन्धवर्णरसादिभिः।
शिल्पिशास्त्रोक्तमार्गेण मण्डपं तत्र कल्पयेत् ॥ २
कृत्वा वेदिं च तन्मध्ये कुण्डानि परिकल्पयेत्।
अष्टदिक्षु तथा दिक्षु तत्रैशान्यां पुनः क्रमात् ॥ ३
प्रधानकुण्डं कुर्वीत यद्वा पश्चिमभागतः।
प्रधानमेकमेवाथ कृत्वा शोभां प्रकल्पयेत् ॥ ४
वितानध्वजमालाभिर्विविधाभिरनेकशः।
वेदिमध्ये ततः कुर्यान्मंडलं शुभलक्षणम् ॥ ५

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! नाना प्रकारके दोषोंसे रहित शुद्ध स्थान और पवित्र दिनमें गुरु पहले शिष्यका 'समय' नामक संस्कार करे ॥ १ ॥

गन्ध, वर्ण और रस आदिसे विधिपूर्वक भूमिकी परीक्षा करके वास्तु-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिसे वहाँ मण्डपका निर्माण करे ॥ २ ॥

मण्डपके बीचमें वेदी बनाकर आठों दिशाओंमें छोटे छोटे कुण्ड बनाये। फिर ईशानकोणमें या पश्चिम दिशामें प्रधानकुण्डका निर्माण करे। एक ही प्रधान कुण्ड बनाकर चँदोवा, ध्वज तथा अनेक प्रकारकी बहुसंख्यक मालाओंसे उसको सजाये। तत्पश्चात् वेदीके मध्यभागमें शुभ लक्षणोंसे युक्त मण्डल बनाये ॥ ३—५ ॥

रक्तहेमादिभिश्चूर्णैरीश्वरावाहनोचितम् ।
सिंदूरशालिनीवारचूर्णैरेवाथ निर्धनः ॥ ६

लालरंगके सुवर्ण आदिके चूर्णसे वह मण्डल बनाना चाहिये। मण्डल ऐसा हो कि उसमें ईश्वरका आवाहन किया जा सके। निर्धन मनुष्य सिन्दूर तथा अगहनी या तिन्नीके चावलके चूर्णसे मण्डल बनाये॥ ६॥

एकहस्तं द्विहस्तं वा सितं वा रक्तमेव वा।
एकहस्तस्य पद्मस्य कर्णिकाष्टांगुला मता॥ ७

उस मण्डपमें एक या दो हाथका श्वेत या लाल कमल बनाये। एक हाथके कमलकी कर्णिका आठ अंगुलकी होनी चाहिये॥ ७॥

केसराणि तदर्धानि शेषं चाष्टदलादिकम्।
द्विहस्तस्य तु पद्मस्य द्विगुणं कर्णिकादिकम्॥ ८

कृत्वा शोभोपशोभाढ्या मैशान्या तस्य कल्पयेत्।
एकहस्तं तदर्द्धं वा पुनर्वेद्यां तु मंडलम्॥ ९

उसके केसर चार अंगुलमें हों और शेष भागमें अष्टदल आदिकी कल्पना करे। दो हाथके कमलकी कर्णिका आदि एक हाथवालेसे दुगुनी होनी चाहिये। उक्त वेदी या मण्डपके ईशानकोणमें पुनः एक वेदीपर एक हाथ या आधे हाथका मण्डल बनाये और उसे शोभाजनक सामग्रियोंसे सुशोभित करे॥ ८-९॥

व्रीहितंदुलसिद्धार्थतिलपुष्पकुशास्तृते ।
तत्र लक्षणसंयुक्तं शिवकुंभं प्रसाधयेत्॥ १०

तत्पश्चात् धान, चावल, सरसों, तिल, फूल और कुशासे उस मण्डलको आच्छादित करके उसके ऊपर शुभ लक्षणसे युक्त शिवकलशकी स्थापना करे॥ १०॥

सौवर्णं राजतं वापि ताम्रजं मृन्मयं तु वा।
गन्धपुष्पाक्षताकीर्णं कुशदूर्वाङ्कुराचितम्॥ ११

सितसूत्रावृतं कंठे नववस्त्रयुगावृतम्।
शुद्धाम्बुपूर्णमुत्कूर्चं सद्द्रव्यं सपिधानकम्॥ १२

वह कलश सोना, चाँदी, ताँबा अथवा मिट्टीका होना चाहिये। उसपर गन्ध, पुष्प, अक्षत, कुश और दूर्वांकुर रखे जायँ, उसके कण्ठमें सफेद सूत लपेटा जाय और उसे दो नूतन वस्त्रोंसे आच्छादित किया जाय। उसमें शुद्ध जल भर दिया जाय। कलशमें एक मुट्ठा कुश अग्रभाग ऊपरकी ओर करके डाला जाय। सुवर्ण आदि द्रव्य छोड़ा जाय और उस कलशको ऊपरसे ढक दिया जाय॥ ११-१२॥

भृङ्गारं वर्धनीं चापि शंखं च चक्रमेव वा।
विना सूत्रादिकं सर्वं पद्मपत्रमथापि वा॥ १३

तस्यासनारविंदस्य कल्पयेदुत्तरे दले।
अग्रतश्चंदनांभोभिरस्त्रराजस्य वर्धनीम्॥ १४

उस आसनरूप कमलके उत्तर दलमें सूत्र आदिके बिना झारी या गड़ुआ, वर्धनी (विशिष्ट जलपात्र), शंख, चक्र और कमलदल आदि सब सामग्री संग्रह करके रखे। उक्त आसन-मण्डलके अग्रभागमें चन्दनमिश्रित जलसे भरी हुई वर्धनी अस्त्रराजके लिये रखे॥ १३-१४॥

मण्डलस्य ततः प्राच्यां मन्त्रकुंभे च पूर्ववत्।
कृत्वा विधिवदीशस्य महापूजां समाचरेत्॥ १५

फिर मण्डलके पूर्वभागमें पूर्ववत् मन्त्रयुक्त कलशकी स्थापना करके शिवकी विधिपूर्वक महापूजा आरम्भ करे॥ १५॥

अथार्णवस्य तीरे वा नद्यां गोष्ठेऽपि वा गिरौ।
देवागारे गृहे वापि देशेऽन्यस्मिन्मनोहरे॥ १६
कृत्वा पूर्वोदितं सर्वं विना वा मंडपादिकम्।

समुद्र या नदीके किनारे, गोशालामें, पर्वतके शिखरपर, देवालयमें अथवा घरमें या किसी भी मनोहर स्थानमें मण्डपादि रचनाके बिना पूर्वोक्त सब कार्य करे॥ १६१/२॥

मंडलं पूर्ववत्कृत्वा स्थंडिलं च विभावसोः ॥ १७
प्रविश्य पूजाभवनं प्रहृष्टवदनो गुरुः।
सर्वमङ्गलसंयुक्तः समाचरितनैत्यकः ॥ १८
महापूजां महेशस्य कृत्वा मण्डलमध्यतः।
शिवकुंभे तथा भूयः शिवमावाह्य पूजयेत् ॥ १९

फिर पूर्ववत् मण्डल और अग्निकी वेदी बनाकर गुरु प्रसन्नमुखसे पूजा भवनमें प्रवेश करे। वहाँ सब प्रकारके मंगल-कृत्यका सम्पादन करके नित्यकर्मके अनुष्ठानपूर्वक मण्डलके मध्यभागमें महेश्वरकी महापूजा करनेके अनन्तर पुनः शिवकलशपर शिवका आवाहन-पूजन करे॥ १७—१९॥

पश्चिमाभिमुखं ध्यात्वा यज्ञरक्षकमीश्वरम्।
अर्चयेदस्त्रवर्द्धन्यामस्त्रमीशस्य दक्षिणे ॥ २०
मन्त्रकुम्भे च विन्यस्य मन्त्रं मन्त्रविशारदः।
कृत्वा मुद्रादिकं सर्वं मन्त्रयागं समाचरेत् ॥ २१

पश्चिमाभिमुख यज्ञरक्षक ईश्वरका ध्यान करके अस्त्रराजकी वर्धनीमें दक्षिणकी ओर ईश्वरके अस्त्रकी पूजा करे। फिर मन्त्रयुक्त कलशमें मन्त्र तथा मुद्रा आदिका न्यास करके मन्त्रविशारद गुरु मन्त्र-याग करे॥ २०-२१॥

ततः शिवानले होमं कुर्याद्देशिकसत्तमः।
प्रधानकुण्डे परितो जुहुयुश्चापरे द्विजाः ॥ २२
आचार्यात्पादमर्द्धं वा होमस्तेषां विधीयते।
प्रधानकुण्ड एवाथ जुहुयाद्देशिकोत्तमः ॥ २३

इसके बाद देशिकशिरोमणि गुरु प्रधान कुण्डमें शिवाग्निकी स्थापना करके उसमें होम करे। साथ ही दूसरे ब्राह्मण भी चारों ओरसे उसमें आहुति डालें। आचार्यसे आधे या चौथाई होमका उनके लिये विधान है। आचार्यशिरोमणिको प्रधान कुण्डमें ही हवन करना चाहिये॥ २२-२३॥

स्वाध्यायमपरे कुर्युः स्तोत्रं मङ्गलवाचनम्।
जपं च विधिवच्चान्ये शिवभक्तिपरायणाः ॥ २४

दूसरे लोगोंको स्वाध्याय, स्तोत्र एवं मंगलपाठ करना चाहिये। अन्य शिवभक्त भी वहाँ विधिवत् जप करें॥ २४॥

नृत्यं गीतं च वाद्यं च मङ्गलान्यपराणि च।
पूजनं च सदस्यानां कृत्वा सम्यग्विधानतः ॥ २५
पुण्याहं कारयित्वाथ पुनः संपूज्य शङ्करम्।
प्रार्थयेद्देशिको देवं शिष्यानुग्रहकाम्यया ॥ २६
प्रसीद देवदेवेश देहमाविश्य मामकम्।
विमोचयैनं विश्वेश घृणया च घृणानिधे ॥ २७

नृत्य, गीत, वाद्य एवं अन्य मंगल-कृत्य भी होने चाहिये। सदस्योंका विधिवत् पूजन, पुण्याहवाचन तथा पुनः भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न करके शिष्यपर अनुग्रह करनेकी इच्छा मनमें ले आचार्य महादेवजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'देवदेवेश्वर! प्रसन्न होइये। विश्वनाथ! दयानिधे! मेरे शरीरमें प्रवेश करके आप कृपापूर्वक इस शिष्यको बन्धनमुक्त कराइये।'॥ २५—२७॥

अथ चैवं करोमीति लब्धानुज्ञस्तु देशिकः।
आनीयोपोषितं शिष्यं हविष्याशिनमेव वा ॥ २८
एकाशनं वा विरतं स्नातं प्रातःकृतक्रियम्।
जपन्तं प्रणवं देवं ध्यायन्तं कृतमङ्गलम् ॥ २९

तदनन्तर 'मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार इष्टदेवकी अनुमति पाकर गुरु उस शिष्यको, जिसने उपवास किया हो या हविष्य भोजन किया हो, अपने निकट बुलाये। वह शिष्य एक समय भोजन करनेवाला और विरक्त हो। स्नान करके प्रातःकालका कृत्य पूरा कर चुका हो। मंगलकृत्यका सम्पादन करके प्रणवका जप और महादेवजीका ध्यान कर रहा हो॥ २८-२९॥

द्वारस्य पश्चिमस्याग्रमण्डले दक्षिणस्य वा।
दर्भासने समासीनं विधायोदङ्मुखं शिशुम्॥ ३०

स्वयं प्राग्वदनस्तिष्ठन्नूर्ध्वकायं कृताञ्जलिम्।
संप्रोक्ष्य प्रोक्षणीतोयैर्मूर्द्धन्यस्त्रेण मुद्रया॥ ३१

पुष्पक्षेपेण सन्ताड्य बध्नीयाल्लोचनं गुरुः।
दुकूलार्द्धेन वस्त्रेण मन्त्रितेन नवेन च॥ ३२

उससे पश्चिम या दक्षिण द्वारके सामने मण्डलमें कुशके आसनपर उत्तरकी ओर मुँह करके बिठाये और गुरु स्वयं पूर्वकी ओर मुँह करके खड़ा रहे। शिष्य ऊपरकी ओर मुँह करके हाथ जोड़ ले। गुरु प्रोक्षणीके जलसे शिष्यका प्रोक्षण करके उसके मस्तकपर अस्त्रमुद्राद्वारा फूल फेंककर मारे। फिर अभिमन्त्रित नूतन वस्त्र—आधे दुपट्टेसे उसकी आँखोंको बाँध दे॥ ३०—३२॥

ततः प्रवेशयेच्छिष्यं गुरुर्द्वारेण मंडलम्।
सोऽपि तेनेरितः शंभोराचरेत् त्रिःप्रदक्षिणाम्॥ ३३

ततः सुवर्णसंमिश्रं दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं प्रभोः।
प्राङ्मुखश्चोदङ्मुखो वा प्रणमेद्दण्डवत्क्षितौ॥ ३४

इसके बाद शिष्यको दरवाजेसे मण्डलके भीतर प्रवेश कराये। शिष्य भी गुरुसे प्रेरित हो शंकरजीकी तीन बार प्रदक्षिणा करे। इसके बाद प्रभुको सुवर्णमिश्रित पुष्पांजलि चढ़ाकर पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३३-३४॥

ततः संप्रोक्ष्य मूलेन शिरस्यस्त्रेण पूर्ववत्।
सन्ताड्य देशिकस्तस्य मोचयेन्नेत्रबन्धनम्॥ ३५

तदनन्तर मूलमन्त्रसे गुरु शिष्यका प्रोक्षण करके पूर्ववत् अस्त्रमन्त्रके द्वारा उसके मस्तकपर फूलसे ताड़न करनेके पश्चात् नेत्र-बन्धन खोल दे॥ ३५॥

स दृष्ट्वा मंडलं भूयः प्रणमेत्साञ्जलिः प्रभुम्।
अथासीनं शिवाचार्यो मंडलस्य तु दक्षिणे॥ ३६

उपवेश्यात्मनः सव्ये शिष्यं दर्भासने गुरुः।
आराध्य च महादेवं शिवहस्तं प्रविन्यसेत्॥ ३७

शिष्य पुनः मण्डलकी ओर देखकर हाथ जोड़ प्रभुको प्रणाम करे। इसके बाद शिवस्वरूप आचार्य शिष्यको मण्डलके दक्षिण अपने बायें भागमें कुशके आसनपर बिठाये और महादेवजीकी आराधना करके उसके मस्तकपर शिवका वरद हाथ रखे॥ ३६ ३७॥

शिवतेजोमयं पाणिं शिवमन्त्रमुदीरयेत्।
शिवाभिमानसंपन्नो न्यसेच्छिष्यस्य मस्तके॥ ३८

सर्वाङ्गालम्भनं चैव कुर्यात्तेनैव देशिकः।
शिष्योऽपि प्रणमेद्भूमौ देशिकाकृतिमीश्वरम्॥ ३९

'मैं शिव हूँ' इस अभिमानसे युक्त गुरु शिवके तेजसे सम्पन्न अपने हाथको शिष्यके मस्तकपर रखे और शिवमन्त्रका उच्चारण करे। उसी हाथसे वह शिष्यके सम्पूर्ण अंगोंका स्पर्श करे। शिष्य भी आचार्यरूपमें उपस्थित हुए ईश्वरको पृथ्वीपर गिरकर साष्टांग प्रणाम करे॥ ३८-३९॥

ततः शिवानले देवं समभ्यर्च्य यथाविधि।
हुताहुतित्रयं शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा॥ ४०

दर्भाग्रैः संस्पृशंस्तं च विद्ययात्मानमाविशेत्।

तदनन्तर जब शिष्य शिवाग्निमें महादेवजीकी विधिवत् पूजा करके तीन आहुति दे ले, तब गुरु पुनः पूर्ववत् शिष्यको अपने पास बिठा ले। कुशोंके अग्रभागसे उसका स्पर्श करते हुए विद्या या मन्त्रद्वारा अपने आपको उसके भीतर आविष्ट करे॥ ४०½॥

नमस्कृत्य महादेवं नाडीसन्धानमाचरेत्॥ ४१

शिवशास्त्रोक्तमार्गेण कृत्वा प्राणस्य निर्गमम्।
शिष्यदेहप्रवेशं च स्मृत्वा मन्त्रांस्तु तर्पयेत्॥ ४२

तत्पश्चात् महादेवजीको प्रणाम करके नाड़ी-संधान करे। फिर शिव-शास्त्रमें बताये हुए मार्गसे प्राणका निष्क्रमण करके शिष्यके शरीरमें प्रवेशकी भावना करे. साथ ही मन्त्रोंका तर्पण भी करे॥ ४१-४२॥

सन्तर्पणाय मूलस्य तेनैवाहुतयो दश।
देयास्तिस्त्रस्तथाङ्गानामङ्गैरेव यथाक्रमम्॥ ४३

ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रायश्चित्ताय देशिकः।
पुनर्दशाहुतीः कुर्यान्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥ ४४

मूलमन्त्रके तर्पणके लिये उसीके उच्चारणपूर्वक दस आहुतियाँ देनी चाहिये। फिर अंगोंके तर्पणके लिये अंग-मन्त्रोंद्वारा ही क्रमशः तीन आहुतियाँ दे। इसके बाद पूर्णाहुति देकर मन्त्रवेत्ता गुरु प्रायश्चित्तके निमित्त मूलमन्त्रसे पुनः दस आहुतियाँ अग्निमें डाले॥ ४३-४४॥

पुनः संपूज्य देवेशं सम्यगाचम्य देशिकः।
हुत्वा चैव यथान्यायं स्वजात्या वैश्यमुद्धरेत्॥ ४५

तस्यैवं जनयेत्क्षात्रमुद्धारं च ततः पुनः।
कृत्वा तथैव विप्रत्वं जनयेदस्य देशिकः॥ ४६

फिर देवेश्वर शिवका पूजन करके सम्यक् आचमन और हवन करनेके पश्चात् यथोचित रीतिसे जातितः वैश्यका उद्धार करे। भावनाद्वारा उसके वैश्यत्वको निकालकर उसमें क्षत्रियत्वकी उत्पत्ति करे। फिर इसी तरह क्षत्रियत्वका भी उद्धार करके गुरु उसमें ब्राह्मणत्वकी उद्भावना करे॥ ४५-४६॥

राजन्यं चैवमुद्धृत्य कृत्वा विप्रं पुनस्तयोः।
रुद्रत्वं जनयेद्विप्रे रुद्रनामैव साधयेत्॥ ४७

प्रोक्षणं ताडनं कृत्वा शिशोः स्वात्मानमात्मनि।
शिवात्मकमनुस्मृत्य स्फुरन्तं विस्फुलिंगवत्॥ ४८

इसी प्रणालीसे जातितः क्षत्रियका भी उद्धार करके ब्राह्मण बनाये। फिर उन दोनों शिष्योंमें रुद्रत्वकी उत्पत्ति करे। जो जातिसे ही ब्राह्मण है, उस शिष्यमें केवल रुद्रत्वकी ही स्थापना करे। फिर शिष्यका प्रोक्षण और ताड़न करके आगकी चिनगारियोंके समान प्रकाशमान शिवस्वरूप उसकी आत्माको अपने आत्मामें स्थित होनेकी भावना करे॥ ४७-४८॥

नाड्या यथोक्तया वायुं रेचयेन्मन्त्रतो गुरुः।
निर्गम्य प्रविशेन्नाड्यां शिष्यस्य हृदयं तथा॥ ४९

प्रविश्य तस्य चैतन्यं नीलबिन्दुनिभं स्मरन्।
स्वतेजसापास्तमलं ज्वलन्तमनुचिन्तयेत्॥ ५०

तदनन्तर पूर्वोक्त नाड़ीसे गुरु मन्त्रोच्चारणपूर्वक वायुका रेचन (निःसारण) करे। वायुका निःसारण करके उस नाड़ीके द्वारा ही शिष्यके हृदयमें वह स्वयं प्रवेश करे। प्रवेश करके उसके चैतन्यका नील बिन्दुके समान चिन्तन करे। साथ ही यह भावना करे कि मेरे तेजसे इसका सारा मल नष्ट हो गया और यह पूर्णतः प्रकाशित हो रहा है॥ ४९-५०॥

तमादाय तया नाड्या मन्त्री संहारमुद्रया।
पूरकेण निवेश्यैनमेकीभावार्थमात्मनः॥ ५१

कुंभकेन तथा नाड्या रेचकेन यथा पुरा।
तस्मादादाय शिष्यस्य हृदये तं निवेशयेत्॥ ५२

इसके बाद उस जीव चैतन्यको लेकर नाड़ीसे संहारमुद्रा एवं पूरक प्राणायामद्वारा अपने आत्मासे एकीभूत करनेके लिये उसमें निविष्ट करे। फिर रेचककी ही भाँति कुम्भकद्वारा उसी नाड़ीसे उस जीव चैतन्यको वहाँसे लेकर शिष्यके हृदयमें स्थापित कर दे॥ ५१-५२॥

तमालभ्य शिवाल्लब्धं तस्मै दत्त्वोपवीतकम्।
हुत्वाऽऽहुतित्रयं पश्चाद्दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः॥ ५३

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके शिवसे उपलब्ध हुए यज्ञोपवीतको उसे देकर गुरु तीन बार आहुति दे पूर्णाहुति होम करे॥ ५३॥

देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्य वरासने।
कुशपुष्पपरिस्तीर्णे बद्धाञ्जलिरुदङ्मुखम्॥ ५४

इसके बाद आराध्यदेवके दक्षिणभागमें शिष्यको कुश तथा फूलसे आच्छादित करके श्रेष्ठ आसनपर बिठाकर उसका मुँह उत्तरकी ओर करके उसे

स्वस्तिकासनमारूढं विधाय प्राङ्मुखः स्वयम्।
वरासनस्थितो मन्त्रैर्महामङ्गलनिःस्वनैः ॥ ५५

समादाय घटं पूर्णं पूर्णमेव प्रसाधितम्।
ध्यायमानः शिवं शिष्यमभिषिञ्चेत देशिकः ॥ ५६

स्वस्तिकासनमें स्थित करे। शिष्य गुरुकी ओर हाथ जोड़े रहे। गुरु स्वयं पूर्वाभिमुख हो एक श्रेष्ठ आसनपर खड़ा रहे और पहलेसे ही स्थापनपूर्वक सिद्ध किये हुए पूर्ण घटको लेकर शिवका ध्यान करते हुए मन्त्रपाठ तथा मांगलिक वाद्योंकी ध्वनिके साथ शिष्यका अभिषेक करे॥ ५४—५६ ॥

अथापनुद्य स्नानाम्बु परिधाय सिताम्बरम्।
आचान्तोऽलंकृतः शिष्यः प्राञ्जलिर्मण्डपं व्रजेत् ॥ ५७

उपवेश्य यथापूर्वं तं गुरुर्दर्भविष्टरे।
संपूज्य मंडले देवं करन्यासं समाचरेत् ॥ ५८

ततस्तु भस्मना देवं ध्यायेन्मनसि देशिकः।
समालभेत पाणिभ्यां शिशुं शिवमुदीरयेत् ॥ ५९

तदनन्तर शिष्य उस अभिषेकके जलको पोंछकर श्वेत वस्त्र धारण करे, आचमन करके अलंकृत हो हाथ जोड़ मण्डपमें जाय। तब गुरु पहलेकी भाँति उसे कुशासनपर बिठाकर मण्डलमें महादेवजीकी पूजा करके करन्यास करे। इसके बाद मन ही मन महादेवजीका ध्यान करते हुए दोनों हाथोंमें भस्म ले शिष्यके अंगोंमें लगाये और शिव-मन्त्रका उच्चारण करे॥ ५७—५९ ॥

अथ तस्य शिवाचार्यो दहनप्लावनादिकम्।
सकलीकरणं कृत्वा मातृकान्यासवर्त्मना ॥ ६०

ततः शिवासनं ध्यात्वा शिष्यमूर्द्धनि देशिकः।
तत्रावाह्य यथान्यायमर्चयेन्मनसा शिवम् ॥ ६१

तदनन्तर शिवाचार्य मातृकान्यासके मार्गसे शिष्यका दहन-प्लावनादि सकलीकरण करके उसके मस्तक-पर शिवके आसनका ध्यान करे और वहाँ शिवका आवाहन करके यथोचित रीतिसे उनकी मानसिक पूजा करे॥ ६०-६१ ॥

प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्देवं नित्यमत्र स्थितो भव।
इति विज्ञाप्य तं शंभोस्तेजसा भासुरं स्मरेत् ॥ ६२

संपूज्याथ शिवं शैवीमाज्ञां प्राप्य शिवात्मिकाम्।
कर्णे शिष्यस्य शनकैः शिवमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ६३

तत्पश्चात् हाथ जोड़ महादेवजीकी प्रार्थना करे—'प्रभो! आप नित्य यहाँ विराजमान हों।' इस तरह प्रार्थना करके मन-ही-मन यह भावना करे कि शिष्य भगवान् शंकरके तेजसे प्रकाशित हो रहा है। इसके बाद पुनः शिवकी पूजा करके शिवारूपिणी शैवी आज्ञा प्राप्त करके गुरु शिष्यके कानमें धीरे-धीरे शिवमन्त्रका उच्चारण करे॥ ६२-६३ ॥

स तु बद्धाञ्जलिः श्रुत्वा मन्त्रं तद्गतमानसः।
शनैस्तं व्याहरेच्छिष्यः शिवाचार्यस्य शासनात् ॥ ६४

ततः शाक्तं च संदिश्य मन्त्रं मन्त्रविचक्षणः।
उच्चारयित्वा च सुखं तस्मै मङ्गलमादिशेत् ॥ ६५

शिष्य हाथ जोड़े हुए उस मन्त्रको सुनकर उसीमें मन लगा शिवाचार्यकी आज्ञाके अनुसार धीरे-धीरे उसकी आवृत्ति करे। फिर मन्त्र-ज्ञानकुशल आचार्य शाक्त-मन्त्रका उपदेश दे, उसका सुख-पूर्वक उच्चारण करवाकर शिष्यके प्रति मंगलाशंसा करे॥ ६४-६५ ॥

ततः समासान्मन्त्रार्थं वाच्यवाचकयोगतः।
समादिश्येश्वरं रूपं योगमासनमादिशेत् ॥ ६६

तत्पश्चात् संक्षेपसे वाच्यवाचक योगके अनुसार ईश्वररूप मन्त्रका उपदेश देकर योगासनकी शिक्षा दे॥ ६६ ॥

अथ गुर्वाज्ञया शिष्यः शिवाग्निगुरुसन्निधौ।
भक्त्यैवमभिसन्धाय दीक्षावाक्यमुदीरयेत्॥ ६७

वरं प्राणपरित्यागश्छेदनं शिरसोऽपि वा।
न त्वनभ्यर्च्य भुञ्जीत भगवन्तं त्रिलोचनम्॥ ६८

तदनन्तर शिष्य गुरुकी आज्ञासे शिव, अग्नि तथा गुरुके समीप भक्तिभावसे प्रतिज्ञापूर्वक निम्नांकितरूपसे दीक्षावाक्यका उच्चारण करे—'मेरे लिये प्राणोंका परित्याग कर देना अच्छा होगा अथवा सिर कटा देना भी अच्छा होगा; किंतु मैं भगवान् त्रिलोचनकी पूजा किये बिना कभी भोजन नहीं कर सकता।' ॥ ६७-६८ ॥

स एव दद्यान्नियतो यावन्मोहविपर्ययः।
तावदाराधयेद्देवं तन्निष्ठस्तत्परायणः॥ ६९

ततः स समयो नाम भविष्यति शिवाश्रमे।
लब्धाधिकारो गुर्वाज्ञापालकस्तद्वशो भवेत्॥ ७०

जबतक मोह दूर न हो, तबतक वह भगवान् शिवमें ही निष्ठा रखकर उन्हींके आश्रित हो नियमपूर्वक उन्हींकी आराधना करता रहे। फिर भगवान् शिव ही उसे योगक्षेम प्रदान करते हैं। ऐसा करनेसे उस शिष्यका नाम 'समय' होगा। उसे शिवाश्रममें रहनेका अधिकार प्राप्त होगा। वहाँ रहनेवाले शिष्यको गुरुकी आज्ञाका पालन करते हुए सदा उनके वशमें रहना चाहिये ॥ ६९-७० ॥

अतः परं न्यस्तकरो भस्मादाय स्वहस्ततः।
दद्याच्छिष्याय मूलेन रुद्राक्षं चाभिमन्त्रितम्॥ ७१

प्रतिमां वापि देवस्य गूढदेहमथापि वा।
पूजाहोमजपध्यानसाधनानि च संभवे॥ ७२

इसके बाद गुरु करन्यास करके अपने हाथसे भस्म लेकर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस भस्म तथा रुद्राक्षको अभिमन्त्रित करके शिष्यके हाथमें दे दे। साथ ही महादेवजीकी प्रतिमा अथवा उनका गूढ़ शरीर (लिंग) और यथासम्भव पूजा, होम, जप एवं ध्यानके साधन भी दे॥ ७१-७२ ॥

सोऽपि शिष्यः शिवाचार्याल्लब्धानि बहुमानतः।
आददीताज्ञया तस्य देशिकस्य न चान्यथा॥ ७३

आचार्यादाप्तमखिलं शिरस्याधाय भक्तितः।
रक्षयेत्पूजयेच्छंभुं मठे वा गृह एव वा॥ ७४

फिर वह शिष्य भी शिवाचार्यसे प्राप्त हुई उन वस्तुओंको उन्हींकी आज्ञासे बड़े आदरके साथ ग्रहण करे। उनकी आज्ञाका उल्लंघन न करे, आचार्यसे प्राप्त हुई सारी वस्तुओंको भक्तिभावसे सिरपर रखकर ले जाय और उनकी रक्षा करे। अपनी रुचिके अनुसार मठमें या घरमें शंकरजीकी पूजा करता रहे॥ ७३-७४ ॥

अतः परं शिवाचारमादिशेदस्य देशिकः।
भक्तिश्रद्धानुसारेण प्रज्ञायाश्चानुसारतः॥ ७५

यदुक्तं यत्समाज्ञातं यच्चैवान्यत्प्रकीर्तितम्।
शिवाचार्येण समये तत्सर्वं शिरसा वहेत्॥ ७६

इसके बाद गुरु भक्ति, श्रद्धा और बुद्धिके अनुसार शिष्यको शिवाचारकी शिक्षा दे। शिवाचार्यने समयाचारके विषयमें जो कुछ कहा हो, जो आज्ञा दी हो तथा और भी जो कुछ बातें बतायी हों, उन सबको शिष्य शिरोधार्य करे॥ ७५-७६ ॥

शिवागमस्य ग्रहणं वाचनं श्रवणं तथा।
देशिकादेशतः कुर्यान्न स्वेच्छातो न चान्यतः॥ ७७

गुरुके आदेशसे ही वह शिवागमका ग्रहण, पठन और श्रवण करे। न तो अपनी इच्छासे करे और न दूसरेकी प्रेरणासे हो। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे

इति संक्षेपतः प्रोक्तः संस्कारः समयाह्वयः।
साक्षाच्छिवपुरप्राप्तौ नृणा परमसाधनम्॥ ७८

समयाख्य-संस्कार—समयाचारकी दीक्षाका वर्णन किया है। यह मनुष्योंको साक्षात् शिवधामकी प्राप्ति करानेके लिये सबसे उत्तम साधन है॥ ७७-७८॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे शिष्यसंस्कारवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें शिष्य-संस्कारवर्णन नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १६॥

अथ सप्तदशोऽध्यायः

षडध्वशोधनका निरूपण

उपमन्युरुवाच

अतः परं समावेक्ष्य गुरुः शिष्यस्य योग्यताम्।
षडध्वशुद्धिं कुर्वीत सर्वबन्धविमुक्तये॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! इसके बाद गुरु शिष्यकी योग्यताको देखकर उसके सम्पूर्ण बन्धनोंकी निवृत्तिके लिये षडध्वशोधन करे॥ १॥

कला तत्त्वं च भुवनं वर्णं पदमतः परम्।
मन्त्रश्चेति समासेन षडध्वा परिपठ्यते॥ २

कला, तत्त्व, भुवन, वर्ण, पद और मन्त्र—ये ही संक्षेपसे छः अध्वा कहे गये हैं॥ २॥

निवृत्त्याद्याः कलाः पञ्च कलाध्वा कथ्यते बुधैः।
व्याप्ताः कलाभिरितरे त्वध्वानः पञ्च पञ्चभिः॥ ३

निवृत्ति* आदि जो पाँच कलाएँ हैं, उन्हें विद्वान् पुरुष कलाध्वा कहते हैं। अन्य पाँच अध्वा इन पाँचों कलाओंसे व्याप्त हैं॥ ३॥

शिवतत्त्वादिभूम्यन्तं तत्त्वाध्वा समुदाहृतः।
षड्विंशत्संख्ययोपेतः शुद्धाशुद्धोभयात्मकः॥ ४

शिवतत्त्वसे लेकर भूमिपर्यन्त जो छब्बीस तत्त्व हैं, उनको 'तत्त्वाध्वा' कहा गया है। यह अध्वा शुद्ध और अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है॥ ४॥

आधाराद्युन्मनान्तश्च भुवनाध्वा प्रकीर्तितः।
विना भेदोपभेदाभ्यां षष्टिसंख्यासमन्वितः॥ ५

आधारसे लेकर उन्मनातक 'भुवनाध्वा' कहा गया है। यह भेद और उपभेदोंको छोड़कर साठ है॥ ५॥

पञ्चाशद् रुद्ररूपास्तु वर्णा वर्णाध्वसंज्ञिताः।
अनेकभेदसम्पन्नः पदाध्वा समुदाहृतः॥ ६

रुद्रस्वरूप जो पचास वर्ण हैं, उन्हें 'वर्णाध्वा' की संज्ञा दी गयी है। पदोंको 'पदाध्वा' कहा गया है, जिसके अनेक भेद हैं॥ ६॥

सर्वोपमन्त्रैर्मन्त्राध्वा व्याप्तः परमविद्यया।
यथा शिवो न तत्त्वेषु गण्यते तत्त्वनायकः॥ ७

मन्त्राध्वनि न गण्येत तथासौ मन्त्रनायकः।
कलाध्वनो व्यापकत्वं व्याप्यत्वं चेतराध्वनाम्॥ ८

सब प्रकारके उपमन्त्रोंसे 'मन्त्राध्वा' होता है, जो परम विद्यासे व्याप्त है। जैसे तत्त्वनायक शिवकी तत्त्वोंमें गणना नहीं होती, उसी प्रकार उस मन्त्रनायक महेश्वरकी मन्त्राध्वामें गणना नहीं होती। कलाध्वा व्यापक है और अन्य अध्वा व्याप्य हैं॥ ७-८॥

न वेत्ति तत्त्वतो यः स नैवार्हत्यध्वशोधनम्।
षड्विधस्याध्वनो रूपं न येन विदितं भवेत्॥ ९

व्याप्यव्यापकता तेन ज्ञातुमेव न शक्यते।

जो इस बातको ठीक-ठीक नहीं जानता है, वह अध्वशोधनका अधिकारी नहीं है। जिसने छः प्रकारके अध्वाका रूप नहीं जाना, वह उनके व्याप्य-व्यापक भावको समझ ही नहीं सकता है।

* निवृत्ति, प्रतिष्ठा, विद्या, शान्ति और शान्त्यतीता—ये पाँच कलाएँ हैं।

तस्मादध्वस्वरूपं च व्याप्यव्यापकतां तथा ॥ १०
यथावदवगम्यैव कुर्यादध्वविशोधनम्।
कुण्डमण्डलपर्यन्तं तत्र कृत्वा यथा पुरा ॥ ११
द्विहस्तमानं कुर्वीत प्राच्यां कलशमण्डलम्।
ततः स्नातः शिवाचार्यः सशिष्यः कृतनैत्यकः ॥ १२
प्रविश्य मण्डलं शम्भोः पूजां पूर्ववदाचरेत्।
तत्राढकावरैः सिद्धं तन्दुलैः पायसं प्रभोः ॥ १३
अर्द्धं निवेद्य होमार्थं शेषं समुपकल्पयेत्।
पुरतः कल्पिते वाथ मण्डले वर्णिमण्डिते ॥ १४
स्थापयेत्पञ्चकलशान्दिक्षु मध्ये च देशिकः।
तेषु ब्रह्माणि मूलार्णैर्बिन्दुनादसमन्वितैः ॥ १५
नम आद्यैर्यकारान्तैः कल्पयेत्कल्पवित्तमः।
ईशानं मध्यमे कुम्भे पुरुषं पुरतः स्थिते ॥ १६
अघोरं दक्षिणे वामे वामं सद्यं च पश्चिमे।
रक्षां विधाय मुद्रां च बद्ध्वा कुम्भाभिमन्त्रणम् ॥ १७
कृत्वा शिवानलैर्होमं प्रारभेत यथा पुरा।
यदर्द्धं पायसं पूर्वं होमार्थं परिकल्पितम् ॥ १८
हुत्वा शिष्यस्य तच्छेषं भोक्तुं समुपकल्पयेत्।
तर्पणान्तं च मन्त्राणां कृत्वा कर्म यथा पुरा ॥ १९
हुत्वा पूर्णाहुतिं तेषां ततः कुर्यात्प्रदीपनम्।
ॐकारादनु हुङ्कारं ततो मूलं फडन्तकम् ॥ २०
स्वाहान्तं दीपने प्राहुरङ्गानि च यथाक्रमम्।
तेषामाहुतयस्तिस्रो देया दीपनकर्मणि ॥ २१

इसलिये अध्वाओंके स्वरूप तथा उनके व्याप्य-व्यापक भावको ठीक-ठीक जानकर ही अध्व-शोधन करना चाहिये ॥ ९-१०१/२ ॥

पूर्ववत् कुण्ड और मण्डल निर्माणका कार्य वहाँ करके पूर्वदिशामें दो हाथ लम्बा चौड़ा कलशमण्डल बनावे। तत्पश्चात् शिवाचार्य शिष्यसहित स्नान और नित्यकर्म करके मण्डलमें प्रविष्ट हो पहलेकी ही भाँति शिवजीकी पूजा करे ॥ ११-१२१/२ ॥

फिर वहाँ लगभग चार सेर चावलसे तैयार की गयी खीरमेंसे आधा प्रभुको नैवेद्य लगा दे और शेष खीरको होमके लिये रख दे। पूर्वदिशाकी ओर बने हुए अनेक रंगोंसे अलंकृत मण्डलमें गुरु पाँच कलशोंकी स्थापना करे। चारको तो चारों दिशाओंमें रखे और एकको मध्यभागमें ॥ १३-१४१/२ ॥

उन कलशोंपर मूलमन्त्रके '**नमः शिवाय**' इन पाँचों अक्षरोंको बिन्दु और नादसे युक्त करके उनके द्वारा कल्पविधिका ज्ञाता गुरु ईशान आदि ब्रह्मोंकी स्थापना करे ॥ १५१/२ ॥

मध्यवर्ती कलशपर '**ॐ नं ईशानाय नमः, ईशानं स्थापयामि**' कहकर ईशानकी स्थापना करे। पूर्ववर्ती कलशपर '**ॐ मं तत्पुरुषाय नमः, तत्पुरुषं स्थापयामि**' कहकर तत्पुरुषकी, दक्षिण कलशपर '**ॐ शिं अघोराय नमः, अघोरं स्थापयामि**' कहकर अघोरको, वाम या उत्तरभागमें रखे हुए कलशपर '**ॐ वां वामदेवाय नमः, वामदेवं स्थापयामि**' कहकर वामदेवकी तथा पश्चिमके कलशपर '**ॐ यं सद्योजाताय नमः, सद्योजातं स्थापयामि**' कहकर सद्योजातकी स्थापना करे। तदनन्तर रक्षाविधान करके मुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करे। इसके बाद पूर्ववत् शिवाग्निमें होम आरम्भ करे ॥ १६-१७१/२ ॥

पहले होमके लिये जो आधी खीर रखी गयी थी, उसका हवन करके शेषभाग शिष्यको खानेके लिये दे। पहलेकी भाँति मन्त्रोंका तर्पणान्त कर्म करके पूर्णाहुति होम करनेके पश्चात् प्रदीपन कर्म करे। प्रदीपन कर्ममें '**ॐ हुं नमः शिवाय फट् स्वाहा**' का उच्चारण करके क्रमशः हृदय आदि अंगोंको तीन तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। अंगोंमें हृदय, सिर, शिखा, कवच, नेत्रत्रय और अस्त्र—इन छःकी गणना है ॥ १८—२१ ॥

मन्त्रैरेकैकशस्तैस्तु विचिन्त्या दीप्तमूर्तयः।
त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य द्विजकन्याकृतं सितम्॥ २२

सूत्रं सूत्रेण संमन्त्र्य शिखाग्रे बन्धयेच्छिशोः।

इनमेंसे एक-एक अंगको तीन-तीन बार मन्त्र पढ़कर तीन तीन आहुतियाँ देनी चाहिये। इन सबके स्वरूपका तेजस्वीरूपमें चिन्तन करना चाहिये। इसके बाद ब्राह्मणकी कुमारी कन्याके द्वारा काते हुए सफेद सूतको एक बार त्रिगुण करके पुनः त्रिगुण करे। फिर उस सूत्रको अभिमन्त्रित करके उसका एक छोर शिष्यकी शिखाके अग्रभागमें बाँध दे॥ २२१/२॥

चरणांगुष्ठपर्यन्तमूर्ध्वकायस्य तिष्ठतः॥ २३
लम्बयित्वा तु तत्सूत्रं सुषुम्णां तत्र योजयेत्।
शान्तया मुद्रयादाय मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्॥ २४
हुत्वाहुतित्रयं तस्याः सान्निध्यमुपकल्पयेत्।
हृदि सन्ताड्य शिष्यस्य पुष्पक्षेपेण पूर्ववत्॥ २५
चैतन्यं समुपादाय द्वादशान्ते निवेद्य च।
सूत्रं सूत्रेण संयोज्य संरक्ष्यास्त्रेण वर्मणा॥ २६
अवगुण्ठ्याथ तत्सूत्रं शिष्यदेहं विचिन्तयेत्।
मूलत्रयमयं पाशं भोगभोग्यत्वलक्षणम्॥ २७
विषयेन्द्रियदेहादिजनकं तस्य भावयेत्।

शिष्य सिर ऊँचा करके खड़ा हो जाय, उस अवस्थामें वह सूत उसके पैरके अँगूठेतक लटकता रहे। सूतको इस तरह लटकाकर उसमें सुषुम्णा नाड़ीकी संयोजना करे। फिर मन्त्रज्ञ गुरु शान्त मुद्राके साथ मूलमन्त्रसे तीन आहुतिका होम करके उस नाड़ीको लेकर उस सूत्रमें स्थापित करे। फिर पूर्ववत् फूल फेंककर शिष्यके हृदयमें ताड़न करे और उससे चैतन्यको लेकर बारह आहुतियोंके पश्चात् शिवको निवेदितकर उस लटकते हुए सूत्रको एक सूतसे जोड़े और '**हुं फट्**' मन्त्रसे रक्षा करके उस सूतको शिष्यके शरीरमें लपेट दे। फिर यह भावना करे कि शिष्यका शरीर मूलत्रयमय पाश है, भोग और भोग्यत्व ही इसका लक्षण है, यह विषय, इन्द्रिय और देह आदिका जनक है॥ २३—२७१/२॥

व्योमादिभूतरूपिण्यः शान्त्यतीतादयः कलाः॥ २८

सूत्रे स्वनामभिर्योज्यः पूज्यश्चैव नमोयुतैः।
अथवा बीजभूतैस्तत्कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्॥ २९

तदनन्तर शान्त्यतीता आदि पाँच कलाओंको, जो आकाशादि तत्त्वरूपिणी हैं, उस सूत्रमें उनके नाम ले-लेकर जोड़ना चाहिये। यथा—

'**व्योमरूपिणीं शान्त्यतीतकलां योजयामि, वायुरूपिणीं शान्तिकलां योजयामि, तेजोरूपिणीं विद्याकलां योजयामि, जलरूपिणीं प्रतिष्ठाकलां योजयामि, पृथ्वीरूपिणीं निवृत्तिकलां योजयामि।**' इति।

इस तरह इन कलाओंका योजन करके उनके नामके अन्तमें '**नमः**' जोड़कर इनकी पूजा करे। यथा—'**शान्त्यतीतकलायै नमः, शान्तिकलायै नमः।**' इत्यादि। अथवा आकाशादिके बीजभूत (हं यं रं वं लं) मन्त्रोंद्वारा या पंचाक्षरके पाँच अक्षरोंमें नाद-बिन्दुका योग करके बीजरूप हुए उन मन्त्राक्षरोंद्वारा क्रमशः पूर्वोक्त कार्य करके तत्त्व आदिमें मलादि पाशोंकी व्याप्तिका चिन्तन करे। इसी तरह मलादि पाशोंमें भी कलाओंकी व्याप्ति देखे। फिर आहुति करके उन कलाओंको संदीपित करे॥ २८—३०॥

ततो मलादेस्तत्त्वादौ व्याप्तिं समवलोकयेत्।
कलाव्याप्तिं मलादौ च हुत्वा संदीपयेत्कलाः॥ ३०

शिष्यं शिरसि संताड्य सूत्रं देहे यथाक्रमम्।
शांत्यतीतपदे सूत्रं लाञ्छयेन्मन्त्रमुच्चरन्॥ ३१

तदनन्तर शिष्यके मस्तकपर [पुष्पसे] ताड़न करके उसके शरीरमें लिपटे हुए सूत्रको मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक शान्त्यतीत पदमें अंकित करे॥ ३१॥

एवं कृत्वा निवृत्त्यन्तं शान्त्यतीतमनुक्रमात्।
हुत्वाहुतित्रयं पश्चान्मण्डले च शिवं यजेत्॥ ३२

इस प्रकार क्रमशः शान्त्यतीतसे आरम्भ करके निवृत्तिकलापर्यन्त पूर्वोक्त कार्य करके तीन आहुतियाँ देकर मण्डलमें पुनः शिवका पूजन करे॥ ३२॥

देवस्य दक्षिणे शिष्यमुपवेश्योत्तरामुखम्।
सदर्भे मण्डले दद्याद्धोमशिष्टं चरुं गुरुः॥ ३३

इसके बाद देवताके दक्षिणभागमें शिष्यको कुशयुक्त आसनपर मण्डलमें उत्तराभिमुख बिठाकर गुरु होमा-वशिष्ट चरु उसे दे॥ ३३॥

शिष्यस्तद्गुरुणा दत्तं सत्कृत्य शिवपूर्वकम्।
भुक्त्वा पश्चाद् द्विराचम्य शिवमन्त्रमुदीरयेत्॥ ३४

गुरुके दिये हुए उस चरुको शिष्य आदरपूर्वक ग्रहण करके शिवका नाम ले उसे खा जाय। फिर दो बार आचमन करके शिवमन्त्रका उच्चारण करे॥ ३४॥

अपरे मण्डले दद्यात् पञ्चगव्यं तथा गुरुः।
सोऽपि तच्छक्तितः पीत्वा द्विराचम्य शिवं स्मरेत्॥ ३५

इसके बाद गुरु दूसरे मण्डलमें शिष्यको पंचगव्य दे। शिष्य भी अपनी शक्तिके अनुसार उसे पीकर दो बार आचमन करके शिवका स्मरण करे॥ ३५॥

तृतीये मण्डले शिष्यमुपवेश्य यथा पुरा।
प्रदद्याद्दन्तपवनं यथाशास्त्रोक्तलक्षणम्॥ ३६

अग्रेण तस्य मृदुना प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः।
वाचं नियम्य चासीनः शिष्यो दन्तान्विशोधयेत्॥ ३७

इसके बाद गुरु शिष्यको मण्डलमें पूर्ववत् बिठाकर उसे शास्त्रोक्त लक्षणसे युक्त दन्तधावन दे। शिष्य पूर्व या उत्तरकी ओर मुँह करके बैठे और मौन हो उस दातौनके कोमल अग्रभागद्वारा अपने दाँतोंकी शुद्धि करे॥ ३६-३७॥

प्रक्षाल्य दन्तपवनं त्यक्त्वाचम्य शिवं स्मरेत्।
प्रविशेद्देशिकादिष्टः प्राञ्जलिः शिवमण्डलम्॥ ३८

फिर उस दातौनको धोकर फेंक दे और [कुल्ला करके मुँह-हाथ धोकर] आचमन करे तथा शिवका स्मरण करे। फिर गुरुकी आज्ञा पाकर शिष्य हाथ जोड़े हुए शिवमण्डलमें प्रवेश करे॥ ३८॥

त्यक्तं तद्दन्तपवनं दृश्यते गुरुणा यदि।
प्रागुदक्पश्चिमे वाग्रे शिवमन्यच्छिवेतरम्॥ ३९

उस फेंके हुए दातौनको यदि गुरुने पूर्व, उत्तर या पश्चिम दिशामें अपने सामने देख लिया तब तो मंगल है; अन्यथा अन्य दिशाओंमें देखनेपर अमंगल होता है॥ ३९॥

अशस्ताशामुखे तस्मिन् गुरुस्तद्दोषशान्तये।
शतमर्द्धं तदर्द्धं वा जुहुयान्मूलमन्त्रतः॥ ४०

यदि निन्दित दिशाकी ओर वह दीख जाय तो उसके दोषकी शान्तिके लिये गुरु मूलमन्त्रसे एक सौ आठ या चौवन आहुतियोंका होम करे॥ ४०॥

ततः शिष्यं समालभ्य जपित्वा कर्णयोः शिवम्।
देवस्य दक्षिणे भागे तं शिष्यमधिवासयेत्॥ ४१

तत्पश्चात् शिष्यका स्पर्श करके उसके कानमें 'शिव' नामका जप करके महादेवजीके दक्षिणभागमें शिष्यको बिठाये॥ ४१॥

अथ प्रणम्य वागीशं निवृत्तेर्व्यापिकां सतीम्॥ ७
मण्डले देवमभ्यर्च्य हुत्वा चैवाहुतित्रयम्।
प्रापयेच्च शिशोः प्राप्तिं युगपत्सर्वयोनिषु॥ ८

इसके बाद निवृत्तिकलामें व्यापक सती वागीश्वरीको प्रणाम करके मण्डलमें महादेवजीके पूजनपूर्वक तीन आहुतियाँ दे। शिष्यको एक ही समय सम्पूर्ण योनियोंमें प्राप्त करानेकी भावना करे॥ ७-८॥

सूत्रदेहेऽथ शिष्यस्य ताडनप्रोक्षणादिकम्।
कृत्वात्मानं समादाय द्वादशान्ते निवेद्य च॥ ९
ततोऽप्यादाय मूलेन मुद्रया शास्त्रदृष्टया।
योजयेन्मनसाचार्यो युगपत्सर्वयोनिषु॥ १०

फिर शिष्यके सूत्रमय शरीरमें ताड़न-प्रोक्षण आदि करके उसके आत्मचैतन्यको लेकर द्वादशान्तमें निवेदन करे। फिर वहाँसे भी उसे लेकर आचार्य मूलमन्त्रसे शास्त्रोक्त मुद्राद्वारा मानसिक भावनासे एक ही साथ सम्पूर्ण योनियोंमें संयुक्त करे॥ ९-१०॥

देवानां जातयश्चाष्टौ तिरश्चां पञ्च जातयः।
जात्यैकया च मानुष्या योनयश्च चतुर्दश॥ ११
तासु सर्वासु युगपत्प्रवेशाय शिशोर्धिया।
वागीशान्यां यथान्यायं शिष्यात्मानं निवेशयेत्॥ १२

देवताओंकी आठ जातियाँ हैं, तिर्यक् योनियों (पशु पक्षियों)-की पाँच और मनुष्योंकी एक जाति। इस प्रकार कुल चौदह योनियाँ हैं। उन सबमें शिष्यको एक साथ प्रवेश करानेके लिये गुरु मन-ही-मन भावनाद्वारा शिष्यकी आत्माको यथोचित रीतिसे वागीश्वरीके गर्भमें निविष्ट करे॥ ११-१२॥

गर्भनिष्पत्तये देवं संपूज्य प्रणिपत्य च।
हुत्वा चैव यथान्यायं निष्पन्नं तदनुस्मरेत्॥ १३
निष्पन्नस्यैवमुत्पत्तिमनुवृत्तिं च कर्मणा।
आर्जवं भोगनिष्पत्तिः कुर्यात् प्रीतिं परां तथा॥ १४

वागीश्वरीमें गर्भकी सिद्धिके लिये महादेवजीका पूजन, प्रणाम और उनके निमित्त हवन करके यह चिन्तन करे कि यथावत्‌रूपसे वह गर्भ सिद्ध हो गया। सिद्ध हुए गर्भकी उत्पत्ति, कर्मानुवृत्ति, सरलता, भोगप्राप्ति और परा प्रीतिका चिन्तन करे॥ १३-१४॥

निष्कृत्यर्थं च जात्यायुर्भोगसंस्कारसिद्धये।
हुत्वाहुतित्रयं देवं प्रार्थयेद्देशिकोत्तमः॥ १५

तत्पश्चात् उस जीवके उद्धार तथा जाति, आयु एवं भोगके संस्कारकी सिद्धिके लिये तीन आहुतिका हवन करके श्रेष्ठ गुरु महादेवजीसे प्रार्थना करे॥ १५॥

भोक्तृत्वविषयासङ्गमलं तत्कायशोधनम्।
कृत्वैवमेव शिष्यस्य छिंद्यात्पाशत्रयं ततः॥ १६
निकृत्या परिबद्धस्य पाशस्यात्यन्तभेदतः।
कृत्वा शिष्यस्य चैतन्यं स्वच्छं मन्येत केवलम्॥ १७

भोक्तृत्वविषयक आसक्ति (अथवा भोक्तृता और विषयासक्ति)-रूप मलके निवारणपूर्वक शिष्यके शरीरका शोधन करके उसके त्रिविध पाशका उच्छेद कर डाले। कपट या मायासे बँधे हुए शिष्यके पाशका अत्यन्त भेदन करके उसके चैतन्यको केवल स्वच्छ माने॥ १६-१७॥

हुत्वा पूर्णाहुतिं वह्नौ ब्रह्माणं पूजयेत्ततः।
हुत्वाहुतित्रयं तस्मै शिवाज्ञामनुसंदिशेत्॥ १८
पितामह त्वया नास्य यातुः शैवं परं पदम्।
प्रतिबन्धो विधातव्यः शैवाज्ञैषा गरीयसी॥ १९

फिर अग्निमें पूर्णाहुति देकर ब्रह्माका पूजन करे। ब्रह्माके लिये तीन आहुति देकर उन्हें शिवकी आज्ञा सुनाये—'पितामह! यह जीव शिवके परम-पदको जानेवाला है। तुम्हें इसमें विघ्न नहीं डालना चाहिये। यह भगवान् शिवकी गुरुतर आज्ञा है।'॥ १८-१९॥

इत्यादिश्य तमभ्यर्च्य विसृज्य च विधानतः।
समभ्यर्च्य महादेवं जुहुयादाहुतित्रयम्॥ २०

निवृत्त्या शुद्धमुद्धृत्य शिष्यात्मानं यथा पुरा।
निवेश्यात्मनि सूत्रे च वागीशं पूजयेत्ततः॥ २१

ब्रह्माजीको शिवका यह आदेश सुनाकर उनकी विधिवत् पूजा और विसर्जन करके महादेवजीकी अर्चना करे और उनके लिये तीन आहुति दे तत्पश्चात् निवृत्तिद्वारा शुद्ध हुए शिष्यके आत्माका पूर्ववत् उद्धार करके अपनी आत्मा एवं सूत्रमें स्थापितकर वागीश्वरीका पूजन करे॥ २०-२१॥

हुत्वाहुतित्रयं तस्मै प्रणम्य च विसृज्य ताम्।
कुर्यान्निवृत्तः सन्धानं प्रतिष्ठां कलया सह॥ २२

उनके लिये तीन आहुति दे और प्रणाम करके विसर्जन कर दे। तत्पश्चात् निवृत्त पुरुष प्रतिष्ठाकलाके साथ सांनिध्य स्थापित करे॥ २२॥

सन्धाने युगपत्पूजां कृत्वा हुत्वाहुतित्रयम्।
शिष्यात्मनः प्रतिष्ठायां प्रवेशं त्वथ भावयेत्॥ २३

ततः प्रतिष्ठामावाह्य कृत्वाशेषं पुरोदितम्।
तद्व्याप्तिं व्यापिकां तस्य वागीशानीं च भावयेत्॥ २४

पूर्णेन्दुमण्डलप्रख्यां कृत्वा शेषं च पूर्ववत्।

उस समय एक बार पूजा करके तीन आहुति दे और शिष्यके आत्माके प्रतिष्ठाकलामें प्रवेशकी भावना करे। इसके बाद प्रतिष्ठाका आवाहन करके पूर्वोक्त सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न करनेके पश्चात् उसमें सर्वत्र व्यापक वागीश्वरीदेवीका ध्यान करे। उनकी कान्ति पूर्ण चन्द्रमण्डलके समान है। ध्यानके पश्चात् शेष कार्य पूर्ववत् करे॥ २३-२४½॥

विष्णवे संविशेदाज्ञां शिवस्य परमात्मनः॥ २५

विष्णोर्विसर्जनाद्यं च कृत्वा शेषं च विद्यया।
प्रतिष्ठामनुसन्धाय तस्यां चापि यथा पुरा॥ २६

तदनन्तर भगवान् विष्णुको परमात्मा शिवकी आज्ञा सुनाये। फिर उनका भी विसर्जन आदि शेष कृत्य पूर्ण करके प्रतिष्ठाका विद्यासे संयोग करे। उसमें भी पूर्ववत् सब कार्य करे॥ २५-२६॥

कृत्वानुचिन्त्य तद्व्याप्तिं वागीशां च यथाक्रमम्।
दीप्ताग्नौ पूर्णहोमान्तं कृत्वा शेषं च पूर्ववत्॥ २७

नीलरुद्रमुपस्थाप्य तस्मै पूजादिकं तथा।
कृत्वा कर्म शिवाज्ञां च दद्यात्पूर्वोक्तवर्त्मना॥ २८

साथ ही उसमें व्याप्त वागीश्वरीदेवीका चिन्तन-पूजन तथा प्रज्वलित अग्निमें पूर्णहोमान्त सब कर्म क्रमशः सम्पन्न करके पूर्ववत् नीलरुद्रका आवाहन एवं पूजन आदि करे। फिर पूर्वोक्त रीतिसे उन्हें भी शिवकी आज्ञा सुना दे॥ २७-२८॥

ततस्तमपि चोद्वास्य कृत्वा तस्याथ शान्तये।
विद्याकलां समाधाय तद्व्याप्तिं चावलोकयेत्॥ २९

स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च यथा पुरा।
बालार्कसदृशाकारां भासयन्तीं दिशो दश॥ ३०

तदनन्तर उनका भी विसर्जन करके शिष्यकी दोषशान्तिके लिये विद्याकलाको लेकर उसकी व्याप्तिका अवलोकन करे और उसमें व्यापिका वागीश्वरीदेवीका पूर्ववत् ध्यान करे। उनकी आकृति प्रातःकालके सूर्यकी भाँति अरुण रंगकी है और वे दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही हैं॥ २९-३०॥

ततः शेषं यथापूर्वं कृत्वा देवं महेश्वरम्।
आवाह्याराध्य हुत्वास्मै शिवाज्ञां मनसा दिशेत्॥ ३१

महेश्वरं तथोत्सृज्य कृत्वान्यां च कलामिमाम्।
शान्त्यतीतां कलां नीत्वा तद्व्याप्तिमवलोकयेत्॥ ३२

इस प्रकार ध्यान करके शेष कार्य पूर्ववत् करे। फिर महेश्वरदेवका आवाहन, पूजन और उनके उद्देश्यसे हवन करके उन्हें मन-ही-मन शिवकी पूर्वोक्त आज्ञा सुनाये। तत्पश्चात् महेश्वरका विसर्जन करके अन्य शान्तिकलाको शान्त्यतीताकलातक पहुँचाकर उसकी व्यापकताका अवलोकन करे॥ ३१-३२॥

स्वात्मनो व्यापिकां तद्वद्वागीशीं च विचिन्तयेत्।
नभोमण्डलसङ्काशां पूर्णान्तं चापि पूर्ववत्॥ ३३

कृत्वा शेषविधानेन समभ्यर्च्य सदाशिवम्।
तस्मै समादिशेदाज्ञां शम्भोरमितकर्मणः॥ ३४

तत्रापि च यथापूर्वं शिवं शिरसि पूर्ववत्।
समभ्यर्च्य च वागीशं प्रणम्य च विसर्जयेत्॥ ३५

ततः शिवेन सम्प्रोक्ष्य शिष्यं शिरसि पूर्ववत्।
विलयं शान्त्यतीतायाः शक्तितत्त्वेऽथ चिन्तयेत्॥ ३६

षडध्वनः परे पारे सर्वाध्वव्यापिनीं पराम्।
कोटिसूर्यप्रतीकाशां शैवीं शक्तिं च चिन्तयेत्॥ ३७

तदग्रे शिष्यमानीय शुद्धस्फटिकनिर्मलम्।
प्रक्षाल्य कर्त्तरीं पश्चात् शिवशास्त्रोक्तमार्गतः॥ ३८

कुर्यात्तस्य शिखाच्छेदं सह सूत्रेण देशिकः।
ततस्तां गोमये न्यस्य शिवाग्नौ जुहुयाच्छिखाम्॥ ३९

वौषडन्तेन मूलेन पुनः प्रक्षाल्य कर्तरीम्।
हस्ते शिष्यस्य चैतन्यं तद्देहे विनिवर्तयेत्॥ ४०

ततः स्नातं समाचान्तं कृतस्वस्त्ययनं शिशुम्।
प्रवेश्य मण्डलाभ्याशं प्रणिपत्य च दण्डवत्॥ ४१

पूजां कृत्वा यथान्यायं क्रियावैकल्यशुद्धये।
वाचकेनैव मन्त्रेण जुहुयादाहुतित्रयम्॥ ४२

उपांशूच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्।
पुनः संपूज्य देवेशं मन्त्रवैकल्यशुद्धये॥ ४३

मानसोच्चारयोगेन जुहुयादाहुतित्रयम्।
तत्र शम्भुं समाराध्य मण्डलस्थं सहाम्बया।
हुत्वाहुतित्रयं पश्चात्प्रार्थयेत्प्राञ्जलिर्गुरुः॥ ४४

भगवंस्त्वत्प्रसादेन शुद्धिरस्य षडध्वनः।
कृता तस्मात्परं धाम गमयैनं तवाव्ययम्॥ ४५

उसके स्वरूपमें व्यापक वागीश्वरीदेवीका चिन्तन करे। उनका स्वरूप आकाशमण्डलके समान व्यापक है। इस प्रकार ध्यान करके पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सारा कार्य पूर्ववत् करे। शेष कार्यकी पूर्ति करके सदाशिवकी विधिवत् पूजा करे और उन्हें भी अमित पराक्रमी शम्भुकी आज्ञा सुना दे। फिर वहाँ भी पूर्ववत् शिष्यके मस्तकपर शिवकी पूजा करके उन वागीश्वरदेवको प्रणाम करे और उनका विसर्जन कर दे॥ ३३—३५॥

तदनन्तर शिव-मन्त्रसे पूर्ववत् शिष्यके मस्तकका प्रोक्षण करके यह चिन्तन करे कि शान्त्यतीताकलाका शक्तितत्त्वमें विलय हो गया। छहों अध्वाओंसे परे जो शिवकी सर्वाध्वव्यापिनी पराशक्ति है, वह करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्विनी है, ऐसा उसके स्वरूपका ध्यान करे॥ ३६-३७॥

फिर उस शक्तिके आगे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल हुए शिष्यको ले आकर बिठा दे और आचार्य कैंचीको धोकर शिव-शास्त्रमें बतायी हुई पद्धतिके अनुसार सूत्रसहित उसकी शिखाका छेदन करे। उस शिखाको पहले गोबरमें रखकर फिर '**ॐ नमः शिवाय वौषट्**' का उच्चारण करके उसका शिवाग्निमें हवन कर दे। फिर कैंची और दोनों हाथ धोकर शिष्यकी चेतनाको उसके शरीरमें लौटा दे॥ ३८—४०॥

इसके बाद जब शिष्य स्नान, आचमन और स्वस्तिवाचन कर ले, तब उसे मण्डलके निकट ले जाय और शिवको दण्डवत् प्रणाम करके क्रियालोप-जनित दोषकी शुद्धिके लिये यथोचित रीतिसे पूजा करे। तदनन्तर वाचक मन्त्रका धीरे-धीरे उच्चारण करके अग्निमें तीन आहुतियाँ दे॥ ४१-४२॥

तदुपरान्त उपांशुरीतिसे भी मन्त्र पढ़कर तीन आहुतियाँ प्रदान करे। फिर मन्त्र-वैकल्यजनित दोषकी शुद्धिके लिये देवेश्वर शिवका पूजन करके मन्त्रका मानसिक उच्चारण करते हुए अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। वहाँ मण्डलमें विराजमान अम्बा पार्वतीसहित शम्भुकी समाराधना करके तीन आहुतियोंका हवन करनेके पश्चात् गुरु हाथ जोड़ इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! आपकी कृपासे इस शिष्यकी षडध्वशुद्धि की गयी; अतः अब आप इसे अपने अविनाशी परमधाममें पहुँचाइये।'॥ ४३—४५॥

इति विज्ञाप्य देवाय नाडीसन्धानपूर्वकम्।
पूर्णान्तं पूर्ववत्कृत्वा ततो भूतानि शोधयेत्॥ ४६

स्थिरास्थिरे ततः शुद्धयै शीतोष्णे च ततः पदे।
ध्यायेद्व्याप्त्यैकताकारे भूतशोधनकर्मणि॥ ४७

इस तरह भगवान्‌से प्रार्थनाकर नाड़ी-संधान-पूर्वक पूर्ववत् पूर्णाहुति-होमपर्यन्त कर्मका सम्पादन करके भूतशुद्धि करे। स्थिर-तत्त्व (पृथ्वी), अस्थिर-तत्त्व (वायु), शीत-तत्त्व (जल), उष्ण-तत्त्व (अग्नि) तथा व्यापकता एवं एकतारूप आकाश तत्त्वका भूतशुद्धि कर्ममें चिन्तन करे॥ ४६-४७॥

भूतानां ग्रन्थिविच्छेदं कृत्वा त्यक्त्वा सहाधिपैः।
भूतानि स्थितियोगेन यो जपेत्परमे शिवे॥ ४८

यह चिन्तन उन भूतोंकी शुद्धिके उद्देश्यसे ही करना चाहिये। भूतोंकी ग्रन्थियोंका छेदन करके उनके अधिपतियों या अधिष्ठाता देवताओं-सहित उनके त्यागपूर्वक स्थितियोगके द्वारा उन्हें परम शिवमें नियोजित करे॥ ४८॥

विशोध्यास्यं तनुं दग्ध्वा प्लावयित्वा सुधाकणैः।
स्थाप्यात्मानं ततः कुर्याद्विशुद्धाध्वमयं वपुः॥ ४९

इस प्रकार शिष्यके शरीरका शोधन करके भावनाद्वारा उसे दग्ध करे। फिर उसकी राखको भावनाद्वारा ही अमृतकणोंसे आप्लावित करे। तदनन्तर उसमें आत्माकी स्थापना करके उसके विशुद्ध अध्वमय शरीरका निर्माण करे॥ ४९॥

तत्रादौ शान्त्यतीतां तु व्यापिकां स्वाध्वनः कलाम्।
शुद्धामेव शिशोर्मूर्ध्नि न्यसेच्छान्तिमुखे तथा॥ ५०

विद्यां गलादिनाभ्यन्तं प्रतिष्ठां तदधः क्रमात्।
जान्वन्तं तदधो न्यस्येन्निवृत्तिं चानुचिन्तयेत्॥ ५१

उसमें पहले सम्पूर्ण अध्वोंमें व्यापक शुद्ध शान्त्यतीताकलाका शिष्यके मस्तकपर न्यास करे। फिर शान्तिकलाका मुखमें, विद्याकलाका गलेसे लेकर नाभिपर्यन्त भागमें, प्रतिष्ठा-कलाका उससे नीचेके जानुपर्यन्त अंगोंमें न्यास करके उससे भी नीचेके अंगोंमें निवृत्तिकलाका न्यासकर चिन्तन करे॥ ५०-५१॥

स्वबीजैः सूत्रमन्त्रं च न्यस्याङ्गैस्तं शिवात्मकम्।
बुद्ध्वा तं हृदयांभोजे देवमावाह्य पूजयेत्॥ ५२

तदनन्तर अपने बीजोंसहित सूत्रमन्त्रका न्यास करके सम्पूर्ण अंगोंसहित शिष्यको शिवस्वरूप समझे। फिर उसके हृदयकमलमें महादेवजीका आवाहन करके पूजन करे॥ ५२॥

आशास्य नित्यसान्निध्यं शिवस्वात्म्यं शिशौ गुरुः।
शिवतेजोमयस्यास्य शिशोरापादयेद्गुणान्॥ ५३
अणिमादीन्प्रसीदेति प्रदद्यादाहुतित्रयम्।
तथैव तु गुणानेव पुनरस्योपपादयेत्॥ ५४
सर्वज्ञतां तथा तृप्तिं बोधं चाद्यन्तवर्जितम्।
अलुप्तशक्तिं स्वातन्त्र्यमनन्तां शक्तिमेव च॥ ५५

गुरुको चाहिये कि शिष्यमें भगवान् शिवके स्वरूपकी नित्य उपस्थिति मानकर शिवके तेजसे तेजस्वी हुए उस शिष्यके अणिमा आदि गुणोंका भी चिन्तन करे। फिर भगवान् शिवसे 'आप प्रसन्न हों' ऐसा कहकर अग्निमें तीन आहुतियाँ दे। इसी प्रकार पुनः शिष्यके लिये निम्नांकित गुणोंका ही उपपादन करे। सर्वज्ञता, तृप्ति, आदि-अन्तरहित बोध, अलुप्तशक्तिमत्ता, स्वतन्त्रता और अनन्त-शक्ति— इन गुणोंकी उसमें भावना करे॥ ५३—५५॥

ततो देवमनुज्ञाप्य सद्यादिकलशैस्तु तम्।
अभिषिञ्चेत देवेशं ध्यायन्हृदि यथाक्रमम्॥ ५६

इसके बाद महादेवजीसे आज्ञा लेकर उन देवेश्वरका मन ही-मन चिन्तन करते हुए सद्योजात आदि कलशोंद्वारा क्रमशः शिष्यका अभिषेक करे॥ ५६॥

अथोपवेश्य तं शिष्यं शिवमभ्यर्च्य पूर्ववत्।
लब्धानुज्ञः शिवाच्छैवीं विद्यामस्मै समादिशेत्॥ ५७

तदनन्तर शिष्यको अपने पास बिठाकर पूर्ववत् शिवकी अर्चना करके उनकी आज्ञा ले। उस शिष्यको शैवी विद्याका उपदेश करे॥ ५७॥

ओंकारपूर्विकां तत्र सम्पुटां तु नमोऽन्तगाम्।
शिवशक्तियुताञ्चैव शक्तिविद्यां च तादृशीम्॥ ५८

उस शैवी विद्याके आदिमें ओंकार हो। वह उस ओंकारसे ही सम्पुटित हो और उसके अन्तमें **नमः** लगा हुआ हो। वह विद्या शिव और शक्ति दोनोंसे संयुक्त हो। यथा **ॐ ॐ नमः शिवाय ॐ नमः।** इसी तरह शक्ति विद्याका भी उपदेश करे। यथा—**ॐ ॐ नमः शिवायै ॐ नमः।** इन विद्याओंके साथ ऋषि, छन्द, देवता, शिवा और शिवकी शिवरूपता, आवरण-पूजा तथा शिवसम्बन्धी आसनोंका भी उपदेश दे॥ ५८-५९॥

ऋषिं छन्दश्च देवं च शिवतां शिवयोस्तथा।
पूजां सावरणां शम्भोरासनानि च सन्दिशेत्॥ ५९

पुनः संपूज्य देवेशं यन्मया समनुष्ठितम्।
सुकृतं कुरु तत्सर्वमिति विज्ञापयेत् शिवम्॥ ६०

तत्पश्चात् देवेश्वर शिवका पुनः पूजन करके कहे—'भगवन्! मैंने जो कुछ किया है, वह सब आप सुकृतरूप कर दें।' इस तरह भगवान् शिवसे निवेदन करना चाहिये॥ ६०॥

सहशिष्यो गुरुर्देवं दण्डवत्क्षितिमण्डले।
प्रणम्योद्वासयेत्तस्मात् मण्डलात्पावकादपि॥ ६१

तदनन्तर शिष्यसहित गुरु पृथ्वीपर दण्डकी भाँति गिरकर महादेवजीको प्रणाम करे। प्रणामके अनन्तर उस मण्डलसे और अग्निसे भी उनका विसर्जन कर दे॥ ६१॥

ततः सदसिकाः सर्वे पूज्याः पूजार्हकाः क्रमात्॥ ६२

सेव्या वित्तानुसारेण सदस्याश्च सहर्त्विजः।
वित्तशाठ्यं न कुर्वीत यदीच्छेत् शिवमात्मनः॥ ६३

इसके बाद समस्त पूजनीय सदस्योंका क्रमशः पूजन करना चाहिये। सदस्यों और ऋत्विजोंकी अपने वैभवके अनुसार सेवा करनी चाहिये। साधक यदि अपना कल्याण चाहे तो धन खर्च करनेमें कंजूसी न करे॥ ६२-६३॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे षडध्वशुद्ध्यादिकथनं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें षडध्व-शुद्धि आदिका कथन नामक अठारहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

साधक-संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन

उपमन्युरुवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि साधकं नाम नामतः।
संस्कारमन्त्रमाहात्म्यं कथने सूचितं मया॥ १

उपमन्यु कहते हैं—[यदुनन्दन!] अब मैं साधक संस्कार और मन्त्र-माहात्म्यका वर्णन करूँगा। इस बातकी सूचना मैं पहले दे चुका हूँ॥ १॥

सम्पूज्य मण्डले देवं स्थाप्य कुम्भे च पूर्ववत्।
हुत्वा शिष्यमनुष्णीषं प्रापयेद्भुवि मण्डले॥ २

पूर्ववत् मण्डलमें कलशपर स्थापित महादेवजीकी पूजा करनेके पश्चात् हवन करे। फिर नंगे सिर शिष्यको उस मण्डलके पास भूमिपर बिठावे॥ २॥

पूर्णान्तं पूर्ववत्कृत्वा हुत्वाऽऽहुतिशतं तथा।
सन्तर्प्य मूलमन्त्रेण कलशैर्देशिकोत्तमः॥ ३
सन्दीप्य च यथापूर्वं कृत्वा पूर्वोदितं क्रमात्।
अभिषिच्य यथापूर्वं प्रदद्यान्मन्त्रमुत्तमम्॥ ४

पूर्णाहुति-होमपर्यन्त सब कार्य पूर्ववत् करके मूल-मन्त्रसे सौ आहुतियाँ दे। श्रेष्ठ गुरु कलशोंसे मूतमन्त्रके उच्चारणपूर्वक तर्पण करके संदीपन कर्म करे। फिर क्रमशः पूर्वोक्त कर्मोंका सम्पादन करके अभिषेक करे। तत्पश्चात् गुरु शिष्यको उत्तम मन्त्र दे॥ ३-४॥

तत्र विद्योपदेशान्तं कृत्वा विस्तरशः क्रमात्।
पुष्पाम्बुना शिशोः पाणौ विद्यां शैवीं समर्पयेत्॥ ५
तवैहिकामुष्मिकयोः सर्वसिद्धिफलप्रदः।
भवत्येव महामन्त्रः प्रसादात्परमेष्ठिनः॥ ६

वहाँ विद्योपदेशान्त सब कार्य विस्तारपूर्वक सम्पादित करके पुष्पयुक्त जलसे शिष्यके हाथपर शैवी विद्याको समर्पित करे और इस प्रकार कहे—'सौम्य ! यह महामन्त्र परमेश्वर शिवके कृपा-प्रसादसे तुम्हारे लिये ऐहलौकिक तथा पारलौकिक सम्पूर्ण सिद्धियोंके फलको देनेवाला हो।'॥ ५-६॥

इत्युक्त्वा देवमभ्यर्च्य लब्धानुज्ञः शिवाद्गुरुः।
साधनं शिवयोगं च साधकाय समादिशेत्॥ ७
तच्छ्रुत्वा गुरुसन्देशं क्रमशो मन्त्रसाधकः।
पुरतो विनियोगस्य मन्त्रसाधनमाचरेत्॥ ८

ऐसा कह महादेवजीकी पूजा करके उनकी आज्ञा ले गुरु साधकको साधन और शिवयोगका उपदेश दे। गुरुके उस उपदेशको सुनकर मन्त्रसाधक शिष्य उनके सामने ही विनियोग करके मन्त्र साधन आरम्भ करे॥ ७-८॥

साधनं मूलमन्त्रस्य पुरश्चरणमुच्यते।
पुरतश्चरणीयत्वाद्विनियोगाख्यकर्मणः॥ ९
नात्यन्तं करणीयं तु मुमुक्षोर्मन्त्रसाधनम्।
कृतं तु तदिहान्यत्र तस्यापि शुभदं भवेत्॥ १०

मूलमन्त्रके साधनको पुरश्चरण कहते हैं; क्योंकि विनियोग नामक कर्म सबसे पहले आचरणमें लानेयोग्य है। यही पुरश्चरण शब्दकी व्युत्पत्ति है। मुमुक्षुके लिये मन्त्र-साधन अत्यन्त कर्तव्य है; क्योंकि किया हुआ मन्त्रसाधन इहलोक और परलोकमें साधकके लिये कल्याणदायक होता है॥ ९-१०॥

शुभेऽहनि शुभे देशे काले वा दोषवर्जिते।
शुक्लदन्तनखः स्नातः कृतपूर्वाह्णिकक्रियः॥ ११
अलंकृत्य यथा लब्धैर्गन्धमाल्यविभूषणैः।
सोष्णीषः सोत्तरासङ्गः सर्वशुक्लसमाहितः॥ १२
देवालये गृहेऽन्यस्मिन् देशे वा सुमनोहरे।
सुखेनाभ्यस्तपूर्वेण त्वासनेन कृतासनः॥ १३
तनुं कृत्वात्मनः शैवीं शिवशास्त्रोक्तवर्त्मना।

शुभ दिन और शुभ देशमें निर्दोष समयमें दाँत और नख साफ करके अच्छी तरह स्नान करे और पूर्वाह्णकालिक कृत्य पूर्ण करके यथाप्राप्त गन्ध, पुष्पमाला तथा आभूषणोंसे अलंकृत हो, सिरपर पगड़ी रख, दुपट्टा ओढ़ पूर्णतः श्वेत वस्त्र धारणकर देवालयमें, घरमें या और किसी पवित्र तथा मनोहर देशमें पहलेसे अभ्यासमें लाये गये सुखासनसे बैठकर शिवशास्त्रोक्त पद्धतिके अनुसार अपने शरीरको शिवरूप बनाये॥ ११—१३½॥

संपूज्य देवदेवेशं नकुलीश्वरमीश्वरम्॥ १४
निवेद्य पायसं तस्मै समाप्याराधनं क्रमात्।
प्रणिपत्य च तं देवं प्राप्तानुज्ञाश्च तन्मुखात्॥ १५
कोटिवारं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा जपेत् शिवम्।
लक्षविंशतिकं वापि दशलक्षमथापि वा॥ १६

फिर देवदेवेश्वर नकुलीश्वर शिवका पूजन करके उन्हें खीरका नैवेद्य अर्पित करे। क्रमशः उनकी पूजा पूरी करके उन प्रभुको प्रणाम करे और उनके मुखसे आज्ञा पाकर एक करोड़, आधा करोड़ अथवा चौथाई करोड़ शिवमन्त्रका जप करे अथवा बीस लाख या दस लाख जप करे॥ १४—१६॥

ततश्च पायसाक्षारलवणैकमिताशनः।
अहिंसकः क्षमी शान्तो दान्तश्चैव सदा भवेत्॥ १७

अलाभे पायसस्याश्नन्फलमूलादिकानि वा।
विहितानि शिवेनैव विशिष्टान्युत्तरोत्तरम्॥ १८

चरुं भक्ष्यमथो सक्तुकणान्यावकमेव च।
शाकं पयो दधि घृतं मूलं फलमथोदकम्॥ १९

अभिमन्त्र्य च मन्त्रेण भक्ष्यभोज्यादिकानि च।
साधनेऽस्मिन् विशेषेण नित्यं भुञ्जीत वाग्यतः॥ २०

मन्त्राष्टशतपूतेन जलेन शुचिना व्रती।
स्नायान्नदीनदोत्थेन प्रोक्षयेद्वाथ शक्तितः॥ २१

तर्पयेच्च तथा नित्यं जुहुयाच्च शिवानले।
सप्तभिः पञ्चभिर्द्रव्यैस्त्रिभिर्वाथ घृतेन वा॥ २२

इत्थं भक्त्या शिवं शैवो यः साधयति साधकः।
तस्येहामुत्र दुष्प्रापं न किञ्चिदपि विद्यते॥ २३

अथवाहरहर्मन्त्रं जपेदेकाग्रमानसः।
अनश्नन्नेव साहस्रं विना मन्त्रस्य साधनम्॥ २४

न तस्य दुर्लभं किञ्चिन्न तस्यास्त्यशुभं क्वचित्।
इह विद्यां श्रियं सौख्यं लब्ध्वा मुक्तिं च विन्दति॥ २५

साधने विनियोगे च नित्ये नैमित्तिके तथा।
जपेज्जलैर्भस्मना च स्नात्वा मन्त्रेण च क्रमात्॥ २६

शुचिर्बद्धशिखः सूत्री सपवित्रकरस्तथा।
धृतत्रिपुण्ड्ररुद्राक्षो विद्यां पञ्चाक्षरीं जपेत्॥ २७

उसके बादसे सदा पायस एवं क्षार-नमक-रहित अन्य पदार्थका दिन-रातमें केवल एक बार भोजन करे। अहिंसा, क्षमा, शम (मनोनिग्रह), दम (इन्द्रियसंयम)-का पालन करता रहे। खीर न मिले तो फल, मूल आदिका भोजन करे। भगवान् शिवने निम्नांकित भोज्य पदार्थोंका विधान किया है, जो उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं॥ १७-१८॥

पहले तो चरु भक्षण करनेयोग्य है। उसके बाद सत्तूके कण, जौके आटेका हलुआ, साग, दूध, दही, घी, मूल, फल और जल—ये आहारके लिये विहित हैं॥ १९॥

इन भक्ष्य-भोज्य आदि पदार्थोंको मूलमन्त्रसे अभिमन्त्रित करके प्रतिदिन मौनभावसे भोजन करे। इस साधनमें विशेषरूपसे ऐसा करनेका विधान है॥ २०॥

व्रतीको चाहिये कि एक सौ आठ मन्त्रसे अभिमन्त्रित किये हुए पवित्र जलसे स्नान करे अथवा नदी-नदके जलको यथाशक्ति मन्त्र-जपके द्वारा अभिमन्त्रित करके अपने शरीरका प्रोक्षण कर ले, प्रतिदिन तर्पण करे और शिवाग्निमें आहुति दे। हवनीय पदार्थ सात, पाँच या तीन द्रव्योंके मिश्रणसे तैयार करे अथवा केवल घृतसे ही आहुति दे॥ २१-२२॥

जो शिवभक्त साधक इस प्रकार भक्ति-भावसे शिवकी साधना या आराधना करता है, उसके लिये इहलोक और परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं है॥ २३॥

अथवा प्रतिदिन बिना भोजन किये ही एकाग्रचित्त हो एक सहस्र मन्त्रका जप किया करे। मन्त्र-साधनाके बिना भी जो ऐसा करता है, उसके लिये न तो कुछ दुर्लभ है और न कहीं उसका अमंगल ही होता है। वह इस लोकमें विद्या, लक्ष्मी तथा सुख पाकर अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लेता है॥ २४-२५॥

साधन, विनियोग तथा नित्य-नैमित्तिक कर्ममें क्रमशः जलसे, मन्त्रसे और भस्मसे भी स्नान करके पवित्र हो, शिखा बाँधकर यज्ञोपवीत धारणकर कुशकी पवित्री हाथमें ले ललाटमें त्रिपुण्ड्र लगाकर रुद्राक्षकी माला लिये पंचाक्षर-मन्त्रका जप करना चाहिये॥ २६-२७॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे साधकसंस्कारमन्त्रमाहात्म्यं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें साधक-संस्कार मन्त्र-माहात्म्य नामक उन्नीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ १९॥

अथ विंशोऽध्यायः

योग्य शिष्यके आचार्यपदपर अभिषेकका वर्णन तथा संस्कारके विविध प्रकारोंका निर्देश

उपमन्युरुवाच

अथैवं संस्कृतं शिष्यं कृतपाशुपतव्रतम्।
आचार्यत्वेऽभिषिञ्चेत तद्योगत्वेन चान्यथा॥ १

उपमन्यु कहते हैं—यदुनन्दन! जिसका इस प्रकार संस्कार किया गया हो और जिसने पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान पूरा कर लिया हो, वह शिष्य यदि योग्य हो तो गुरु उसका आचार्यपदपर अभिषेक करे, योग्यता न होनेपर न करे॥ १॥

मण्डलं पूर्ववत्कृत्वा संपूज्य परमेश्वरम्।
स्थापयेत्पञ्चकलशान्दिक्षु मध्ये च पूर्ववत्॥ २

[इस अभिषेकके लिये] पूर्ववत् मण्डल बनाकर परमेश्वर शिवकी पूजा करे। फिर पूर्ववत् पाँच कलशोंकी स्थापना करे। इनमें चार तो चारों दिशाओंमें हों और पाँचवाँ मध्यमें हो॥ २॥

निवृत्तिं पुरतो न्यस्य प्रतिष्ठां पश्चिमे घटे।
विद्यां दक्षिणतः शान्तिमुत्तरे मध्यतः पराम्॥ ३

कृत्वा रक्षादिकं तत्र बद्ध्वा मुद्रां च धैनवीम्।
अभिमन्त्र्य घटान्हुत्वा पूर्णान्तं च यथा पुरा॥ ४

पूर्ववाले कलशपर निवृत्तिकलाका, पश्चिमवाले कलशपर प्रतिष्ठाकलाका, दक्षिण कलशपर विद्याकलाका, उत्तर कलशपर शान्तिकलाका और मध्यवर्ती कलशपर शान्त्यतीताकलाका न्यास करके उनमें रक्षा आदिका विधान करके धेनुमुद्रा बाँधकर कलशोंको अभिमन्त्रित करके पूर्ववत् पूर्णाहुतिपर्यन्त होम करे॥ ३-४॥

प्रवेश्य मण्डले शिष्यमनुष्णीषं च देशिकः।
तर्पणाद्यं तु मन्त्राणां कुर्यात्पूर्वावसानकम्॥ ५
ततः सम्पूज्य देवेशमनुज्ञाप्य च पूर्ववत्।
अभिषेकाय तं शिष्यमासनं त्वधिरोहयेत्॥ ६

फिर नंगे सिर शिष्यको मण्डलमें ले आकर गुरु मन्त्रोंका तर्पण आदि करे और पूर्णाहुतिपर्यन्त हवन एवं पूजन करके पूर्ववत् देवेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यको अभिषेकके लिये ऊँचे आसनपर बिठाये॥ ५-६॥

सकलीकृत्य तं पश्चात्कलापञ्चकरूपिणम्।
न्यस्तमन्त्रतनुं बद्ध्वा शिवं शिष्यं समर्पयेत्॥ ७
ततो निवृत्तिकुम्भादिघटानुद्धृत्य वै क्रमात्।
मध्यमान्ताच्छिवेनैव शिष्यं तमभिषेचयेत्॥ ८

पहले सकलीकरणकी क्रिया करके पंचकला-रूपी शिष्यके शरीरमें मन्त्रका न्यास करे। फिर उस शिष्यको बाँधकर शिवको सौंप दे। तदनन्तर निवृत्तिकला आदिसे युक्त कलशोंको क्रमशः उठाकर शिष्यका शिवमन्त्रसे अभिषेक करे। अन्तमें मध्यवर्ती कलशके जलसे अभिषेक करना चाहिये॥ ७-८॥

शिवहस्तं समर्प्याथ शिशोः शिरसि देशिकः।
शिवभावसमापन्नः शिवाचार्यं तमादिशेत्॥ ९
अथालंकृत्य तं देवमाराध्य शिवमण्डले।
शतमष्टोत्तरं हुत्वा दद्यात्पूर्णाहुतिं ततः॥ १०

इसके बाद शिवभावको प्राप्त हुआ आचार्य शिष्यके मस्तकपर शिवहस्त* रखे और उसे शिवाचार्यकी संज्ञा दे। तदनन्तर उसको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके शिवमण्डलमें महादेवजीकी आराधना करके एक सौ आठ आहुति एवं पूर्णाहुति दे॥ ९-१०॥

---

* गुरु पहले अपने दाहिने हाथपर सुगन्ध-द्रव्यद्वारा मण्डलका निर्माण करे, तत्पश्चात् वह उसपर विधिपूर्वक भगवान् शिवकी पूजा करे। इस प्रकार वह 'शिवहस्त' हो जाता है। 'मैं स्वयं परम शिव हूँ' यह निश्चय करके श्रीगुरुदेव असंदिग्ध-चित्तसे शिष्यके सिरका स्पर्श करते हैं। उस 'शिवहस्त' के स्पर्शमात्रसे शिष्यका शिवत्व अभिव्यक्त हो जाता है।

पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रणम्य भुवि दण्डवत्।
शिरस्यञ्जलिमाधाय शिवं विज्ञापयेद्गुरुः॥ ११

भगवंस्त्वत्प्रसादेन देशिकोऽयं मया कृतः।
अनुगृह्य त्वया देव दिव्याज्ञास्मै प्रदीयताम्॥ १२

फिर देवेश्वरकी पूजा एवं भूतलपर साष्टांग प्रणाम करके गुरु मस्तकपर हाथ जोड़ भगवान् शिवसे यह निवेदन करे—'भगवन्! आपकी कृपासे मैंने इस योग्य शिष्यको आचार्य बना दिया है। देव! अब आप अनुग्रह करके इसे दिव्य आज्ञा प्रदान करें।'॥ ११-१२॥

एवं विज्ञाप्य शिष्येण सह भूयः प्रणम्य च।
शिवं शिवागमं दिव्यं पूजयेत् शिववद्गुरुः॥ १३

पुनः शिवमनुज्ञाप्य शिवज्ञानस्य पुस्तकम्।
उभाभ्यामथ पाणिभ्यां दद्याच्छिष्याय देशिकः॥ १४

इस प्रकार कहकर गुरु शिष्यके साथ पुनः शिवको प्रणाम करे और दिव्य शिवशास्त्रका शिवकी ही भाँति पूजन करे। इसके बाद शिवकी आज्ञा लेकर आचार्य अपने उस शिष्यको अपने दोनों हाथोंसे शिवसम्बन्धी ज्ञानकी पुस्तक दे॥ १३-१४॥

स तां मूर्ध्नि समाधाय विद्यां विद्यासनोपरि।
अधिरोप्य यथान्यायमभिवन्द्य समर्चयेत्॥ १५

अथ तस्मै गुरुर्दद्याद्राजोपकरणान्यपि।
आचार्यपदवीं प्राप्तो राज्यं चापि यतोऽर्हति॥ १६

वह उस शिवागम विद्याको मस्तकपर रखकर फिर उसे विद्यासनपर रखे और यथोचित रीतिसे प्रणामकर उसकी पूजा करे। तदनन्तर गुरु उसे राजोचित चिह्न प्रदान करे; क्योंकि आचार्य-पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष राज्य पानेके भी योग्य है॥ १५-१६॥

अथानुशासनं कुर्यात्पूर्वैराचरितं यथा।
यथा च शिवशास्त्रोक्तं यथा लोकेषु पूज्यते॥ १७

शिष्यान् परीक्ष्य यत्नेन शिवशास्त्रोक्तलक्षणैः।
संस्कृत्य च शिवज्ञानं तेभ्यो दद्याच्च देशिकः॥ १८

तत्पश्चात् गुरु उसे पूर्वाचार्योंद्वारा आचरित तथा शिवशास्त्रोक्त आचारका अनुशासन करे, जिससे सब लोकोंमें सम्मान होता है। 'आचार्य' पदवीको प्राप्त हुआ पुरुष शिवशास्त्रोक्त लक्षणोंके अनुसार यत्नपूर्वक शिष्योंकी परीक्षा करके उनका संस्कार करनेके अनन्तर उन्हें शिवज्ञानका उपदेश दे॥ १७-१८॥

एवं सर्वमनायासं शौचं क्षान्तिं दयां तथा।
अस्पृहामप्यसूयां च यत्नेन च विभावयेत्॥ १९

इत्थमादिश्य तं शिष्यं शिवमुद्वास्य मण्डलात्।
शिवकुम्भानलादींश्च सदस्यानपि पूजयेत्॥ २०

इस प्रकार वह बिना किसी आयासके शौच, क्षमा, दया, अस्पृहा (कामना-त्याग) तथा अनसूया (ईर्ष्या-त्याग) आदि गुणोंका यत्नपूर्वक अपने भीतर संग्रह करे। इस तरह उस शिष्यको आदेश देकर मण्डलसे शिवका, शिव-कलशोंका तथा अग्नि आदिका विसर्जन करके वह सदस्योंका भी पूजन (दक्षिणा आदिसे सत्कार) करे॥ १९-२०॥

युगपद्वाथ संस्कारान् कुर्वीत सगणो गुरुः।
तत्र त्रयं द्वयं वापि प्रयोगस्योपदिश्यते॥ २१

तदादावेव कलशान्कल्पयेदध्वशुद्धिवत्।
कृत्वा समयसंस्कारमभिषेकं विनाऽखिलम्॥ २२

समभ्यर्च्य शिवं भूयः कृत्वा चाध्वविशोधनम्।
तस्मिन् परिसमाप्ते तु पुनर्देवं प्रपूजयेत्॥ २३

अथवा, अपने गणोंसहित गुरु एक साथ ही सब संस्कार करे। जहाँ दो या तीन संस्कारोंका प्रयोग करना हो, वहाँके लिये विधिका उपदेश किया जाता है—वहाँ आदिमें ही अध्वशुद्धि-प्रकरणमें कहे अनुसार कलशोंकी स्थापना करे। अभिषेकके सिवा समयाचार दीक्षाके सब कर्म करके शिवका पूजन और अध्वशोधन करे। अध्वशुद्धि हो जानेपर फिर महादेवजीकी पूजा करे॥ २१—२३॥

हुत्वा मन्त्रं तु संतर्प्य सन्दीप्याशास्य चेश्वरम्।
समर्प्य मन्त्रं शिष्यस्य पाणौ शेषं समापयेत्॥ २४

इसके बाद हवन और मन्त्र-तर्पण करके दीपन-कर्म करे तथा महेश्वरकी आज्ञा ले शिष्यके हाथमें मन्त्रसमर्पणपूर्वक शेष कार्य पूर्ण करे॥ २४॥

अथवा मन्त्रसंस्कारमनुचिन्त्याखिलं क्रमात्।
अध्वशुद्धिं गुरुः कुर्यादभिषेकावसानिकम्॥ २५

अथवा सम्पूर्ण मन्त्र-संस्कारका क्रमशः अनुचिन्तन करके गुरु अभिषेकपर्यन्त अध्वशुद्धिका कार्य सम्पन्न करे॥ २५॥

तत्र यः शान्त्यतीतादिकलासु विहितो विधिः।
स सर्वोऽपि विधातव्यस्तत्त्वत्रयविशोधने॥ २६

शिवविद्यात्मतत्त्वाख्यं तत्त्वत्रयमुदाहृतम्।
शक्तौ शिवस्ततो विद्यात्तस्यास्त्वात्मा समुद्बभौ॥ २७

वहाँ शान्त्यतीता आदि कलाओंके लिये जिस विधिका अनुष्ठान किया गया है। वह सारा विधान तीन तत्त्वोंकी शुद्धिके लिये भी कर्तव्य है। शिव-तत्त्व, विद्या-तत्त्व और आत्म-तत्त्व—ये तीन तत्त्व कहे गये हैं। शक्तिमें पहले शिवका, फिर विद्याका और उसके बाद उसकी आत्माका आविर्भाव हुआ है॥ २६-२७॥

शिवेन शान्त्यतीताध्वा व्याप्तस्तदपरः परः।
विद्यया परिशिष्टोऽध्वा ह्यात्मना निखिलः क्रमात्॥ २८

दुर्लभं शाम्भवं मत्वा मन्त्रमूलं मनीषिणः।
शाक्तं शंसीत संस्कारं शिवशास्त्रार्थपारगाः॥ २९

इति ते सर्वमाख्यातं संस्काराख्यस्य कर्मणः।
चातुर्विध्यमिदं कृष्ण किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ३०

शिवसे 'शान्त्यतीताध्वा' व्याप्त है, उससे 'शान्तिकलाध्वा' उससे 'विद्या-कलाध्वा' विद्यासे परिशिष्ट 'प्रतिष्ठा-कलाध्वा' और उससे 'निवृत्ति-कलाध्वा' व्याप्त है। शिवशास्त्रके पारंगत मनीषी पुरुष मन्त्रमूलक शाम्भव (शैव)-संस्कारको दुर्लभ मानकर शाक्तसंस्कारका प्रतिपादन करते हैं। श्रीकृष्ण! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण यह चतुर्विध संस्कार-कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो?॥ २८—३०॥

इति श्रीशिवमहापुराणे सप्तम्यां वायवीयसंहितायामुत्तरखण्डे विशेषादिसंस्कृतिर्नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥

॥ इस प्रकार श्रीशिवमहापुराणके अन्तर्गत सातवीं वायवीयसंहिताके उत्तरखण्डमें विशेषादिसंस्कृति नामक बीसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥ २०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मका वर्णन

श्रीकृष्ण उवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि शिवाश्रमनिषेविणाम्।
शिवशास्त्रोदितं कर्म नित्यनैमित्तिकं तथा॥ १

श्रीकृष्ण बोले—मैं शिवके आश्रमका सेवन करनेवालोंके शिवशास्त्रोक्त नित्य-नैमित्तिक कर्मको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

उपमन्युरुवाच

प्रातरुत्थाय शयनाद्ध्यात्वा देवं सहाम्बया।
विचार्य कार्यं निर्गच्छेद् गृहादभ्युदितेऽरुणे॥ २

अबाधे विजने देशे कुर्यादावश्यकं ततः।
कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत्॥ ३

उपमन्यु बोले—प्रातःकाल शयनसे उठकर पार्वतीसहित शिवका ध्यान करके अपने [दैनन्दिन] कर्तव्यका भलीभाँति चिन्तन करके अरुणोदयकालमें घरसे निकल जाय। बाधारहित एकान्त स्थानमें आवश्यक कार्य करनेके अनन्तर शौच करके विधि-पूर्वक दन्तधावन करना चाहिये। दातौनके उपलब्ध न